शोध सरोवर पत्रिका

आरती, वषुतक्काटु, तिरुवनन्तपुरम - 695 014, केरल राज्य।

RNI No. KERHIN/2017/70008 ISSN No. 2456-625 X

वर्ष 7 अंक 26 त्रैमासिक हिन्दी शोध पत्रिका 10 अप्रैल 2023

पीयर रिव्यू समितिः

डॉ.शांति नायर

डॉ.के.श्रीलता

डॉ.बी.अशोक

मुख्य संपादक

डॉ.पी.लता

प्रबंध संपादक

डॉ.एस.तंकमणि अम्मा

सह संपादक

प्रो.सती.के

डॉ.एस.लीलाकुमारी अम्मा

श्रीमती वनजा.पी

संपादक मंडल

डॉ.बिन्दु.सी.आर

डॉ.षीना.यू.एस

डॉ.सुमा.आई

डॉ.एलिसबत्त जोर्ज

डॉ.लक्ष्मी.एस.एस

डॉ.धन्या.एल

डॉ.कमलानाथ.एन.एम

डॉ.अश्वती.जी.आर

इस अंक में

संपादकीय	:	3
'कुच्ची का कानून': स्त्री के प्रतिरोध का नया सृजन	: डॉ. प्रिया पी	5
स्वतंत्रता आन्दोलन और हमारे आदिवासी नायक	: डॉ. बन्ना राम मीना	8
'कबिरा खडा बाज़ार में' नाटक में सामयिक संदर्भः कुछ झांकियाँ	: डॉ.लता डी	13
महामानवों का निर्माण करते हैं आदर्श शिक्षक	: हेमन्त कुमार बिनवाल	15
बर्फीले लेह (लद्दाख़) की ओर एक सफर	: डॉ.षीबा शरत.एस	18
भगवद्गीता एवं आधुनिक जीवन में तनाव प्रबंधन	: प्रो.सरोज व्यास	21
वैश्विक संदर्भों में हिन्दी का बाज़ार	: डॉ.राम बिनोद रे	23
जनजातीय त्रासदी की व्यथा कथा- 'काला पादरी'	: डॉ.मनोज एन	28
हिन्दी की नयी कविता में स्वच्छन्दतावादी तत्व-एक विवेचनात्मक अध्ययन	: परवीन कुमार	30
डॉ.जयप्रकाश कर्दम की कहानियों में वर्ग चेतना:	नवमी भद्रन	35
21 वीं सदी के प्रथम दो दशकों के हिन्दी गीतकाव्यों में राजनीतिक जीवन-मूल्य	: कल्पना जैन	40
तुलनात्मक साहित्य में अनुवाद की भूमिका - वैचारिक परिप्रेक्ष्य	: राजीव कुमार बेज	43
स्वतंत्रता-पश्चात् मीडिया के बदलते स्वरूप 'मोबाइल पत्रकारिता' के संदर्भ में विशेष अध्ययन	: अरुणेश कुमार	47

यू जी सी से अनुमोदित पत्रिका

लेखकों से निवेदन

भाषा, साहित्य, समाज एवं संस्कृति पर लिखी गयी स्तरीय मैलिक तथा अप्रकाशित रचनाएँ भेजें। प्राकशनार्थ अनूदित रचनाओं के साथ मूल लेखकों से प्राप्त सहमति पत्र भी भेजें। रचनाएँ डी.वी.सुरेख ई.एन फॉन्ट में या हिंदी यूनिकोड मंगल फॉन्ट में टंकित होनी चाहिए। लेख के प्रारंभ में लेख का सार अपेक्षित है जो अधिकतम 150 से 200 शब्दों के मध्य हो। सार में लेख लिखने का उद्देश्य अवश्य परिलक्षित होना चाहिए। लेख के अनुरूप 5 से 7 की वर्ड भी लिखें। लेख को यथोचित उपशीर्षकों में विभाजित करके लिखें। लेख के अंत में निष्कर्ष अवश्य दें। शब्द सीमा 2500 से 3000 शब्दों की हो। आलेख के अंत में संदर्भ ग्रंथों की सूची ए.पी.ए. के प्रारूप में हो। लेख भेजते समय अपने नाम, पता, फोन नंबर एवं लेख का शीर्षक ई-मेल में अवश्य लिखें। इस आशय का एक घोषणा-पत्र प्रस्तुत कर दें कि लेख मौलिक है, अप्रकाशित है, भविष्य में इससे संबंधित किसी भी विवाद के लिए लेखक उत्तरदायी होंगे।

रचना के अंत में अपना पूरा डाक पता, मोबाइल नंबर और ई-मेल पता अंकित करें। संक्षिप्त जीवन-परिचय और फोटो भी भेजें।

संपादक

डॉ.पी.लता

शोध सरोवर पत्रिका

मूल्य : एक प्रति रु. 100/-

वार्षिक शुल्क रु.400/-

पत्रिका के संबंध में अधिक जानकारी केलिए संपर्क करें - डॉ.पी.लता (संपादक, शोध सरोवर पत्रिका; मंत्री, अखिल भारतीय हिन्दी अकादमी), आरती, टी.सी. 14/1592, फोरस्ट ऑफीस लेन, ई-28, वषुतक्काटु, तिरुवनन्तपुरम - 695 014, केरल राज्य।

फोन : 0471-2332468, 9946253648, 9946679280

ई-मेल : akhilbharatheeyhindiacademy@gmail.com

वेबसाइट : www.shodhsarovarpathrika.co.in

संपादकीय

फिजी में विश्व हिंदी सम्मेलन

'फिजी' दक्षिण प्रशान्त महासागर के मेलानेशिया में एक द्वीप देश है। यह न्यूज़ीलैण्ड के नोर्थ आइलैण्ड से करीब 2000 कि.मी. उत्तर पूर्व में स्थित है। ब्रिटीश उपनिवेश के रूप में लगभग एक शताब्दी के बाद सन् 1970 में फिजी स्वतंत्र हुआ। स्वतंत्र हुआ तो फिजी ने एक संवैधानिक लोकतांत्रिक रूप अपनाया।

12 वाँ विश्व हिन्दी सम्मेलन भारत के विदेश मंत्रालय द्वारा फिजी सरकार के भी सहयोग से 15 फरवरी 2023 से 17 फरवरी 2023 तक नांदी (फिजी) में आयोजित किया गया। विदेश मंत्रालय द्वारा 3-4 वर्षों के अंतराल में विश्व हिन्दी सम्मेलन आयोजित किया जाता है। वैश्विक महामारी कोरोना के कारण 12 वें विश्व हिन्दी सम्मेलन के आयोजन में साढ़े चार वर्ष का अंतराल आया। विश्व हिन्दी सम्मेलनों के आयोजनों का आरंभ सन् 1975 में हुआ। अब तक भारत सहित विश्व के विभिन्न भागों में 12 विश्व हिन्दी सम्मेलन आयोजित किये जा चुके हैं। प्रथम विश्व हिन्दी सम्मेलन 10-12 जनवरी 1975 को नागपुर (भारत) में, दूसरा 28-30 अगस्त 1976 को मॉरीशस की राजधानी पोर्टलुई में, तीसरा 28-30 अक्तूबर 1983 को दिल्ली में, चौथा 2-4 सितंबर 1993 को मॉरीशस के पोर्ट लुई में, पाँचवाँ 4-8 अप्रैल 1996 को त्रिनिदाद और टोवैगो की राजधानी पोर्ट ऑफ स्पेन में, छठा 14-18 दिसंबर 1999 को लंदन में, सातवाँ 5-9 जून 2003 को सूरीनाम की राजधानी पारामारिबो में, आठवाँ 13-16 जुलाई 2007 को अमरीका के न्यूयोर्क में, नवाँ 22-24 सितंबर 2012 को दक्षिण अफ्रीका के जोहानसबर्ग में, दसवाँ 10-12 सितंबर 2015 को मध्यप्रदेश की राजधानी भोपाल में, ग्यारहवाँ 18-20 अगस्त 2018 को मॉरीशस के पोर्टलुई में तथा बारहवाँ 15-17 फरवरी 2023 को फिजी के नांदी में।

भारत की राष्ट्रीय शिक्षानीति-2020 निकलने के बाद ज्ञान-विज्ञान के क्षेत्र में भारतीय ज्ञान-परंपरा का महत्व बढ़ गया है। 12 वें विश्व हिन्दी सम्मेलन का प्रमुख विषय रहा - 'हिन्दी पारंपरिक ज्ञान से कृत्रिम मेधा तक'। इसमें भारत की ज्ञान परंपरा के प्रति सम्मान भाव है, साथ ही संसार को यह समझाया गया है कि 'हिन्दी' साहित्य भाषा मात्र नहीं, वह आधुनिक ज्ञान-विज्ञान के साथ चलने तथा नई तकनीकी से कदम मिलाने में सक्षम भाषा भी है।

सन् 2018 को मॉरीशस में आयोजित 11 वें विश्व हिन्दी सम्मेलन के दौरान 12 वाँ विश्व हिन्दी सम्मेलन फिजी में चलाने का निर्णय लिया गया था। फिजी के नांदी शहर के 'देनाराउ आइलेण्ड कन्वेंशन सेंटर' में 12 वें विश्व हिन्दी सम्मेलन का उद्घाटन 15 फरवरी को पूर्वाह्न 10.00 बजे श्री सुब्रह्मण्यम जयशंकर, (विदेश कार्य मंत्री, भारत सरकार) के साथ फिजी के प्रधान मंत्री श्री सितिवेनी राबुका ने किया। 17 फरवरी को समापन सत्र का उद्घाटन फिजी के उपप्रधान मंत्री श्री बिमन प्रसाद ने किया।

12 वें विश्व हिन्दी सम्मेलन में आदरणीय श्री वी.मुरलीधरन (राज्य मंत्री, विदेश एवं संसदीय कार्य मंत्रालय, भारत सरकार) की भी उपस्थिति रही। उन्होंने इस सम्मेलन की 'स्मारिका' में 'अध्यक्ष की कलाम से' शीर्षक के अंतर्गत हिन्दी भाषा के विकास पर प्रकाश डालकर कहा है-"हिन्दी किसी की राह में बाधा नहीं है, यह तो प्रगति-पथ पर अग्रसर करनेवाली शक्ति है। आज हमारे पास हिन्दी से संचालित एलेक्सा है, अन्य स्वचालित मशीनें हैं, रोबोट हैं, चैटबॉट हैं, जो हिन्दी भाषा समझते हैं। वर्तमान समय में भाषाओं के विकास, उसके संचार के लिए कृत्रिम मेधा का साथ समय की माँग है। किसी भी भाषा को जीवित रखने के लिए उसे भावी पीढ़ी को सौंपना सबसे ज़्यादा ज़रूरी है। यह तभी संभव है, जब हम उसे तकनीक व प्रौद्योगिकी के साथ

कदमताल करने में सक्षम बनायें। इस सम्मेलन का विषय उसी दिशा में एक कदम है। 12 वाँ विश्व हिन्दी सम्मेलन इस शक्ति को सही रूप में विश्व पटल पर रेखांकित करें, ऐसी मेरी कामना है।"

'उद्घाटन सत्र' में सम्मेलन की 'स्मारिका' सहित कुछ पत्रिकाओं का लोकार्पण किया गया, जैसे- राजभाषा विभाग की 'राजभाषा भारती' पत्रिका, भारतीय संस्कृति संबन्ध परिषद की 'गंगनांचल' पत्रिका, विश्व हिन्दी सचिवालय की 'विश्व हिन्दी पत्रिका', केन्द्रीय हिन्दी संस्थान की 'गवेषणा' पत्रिका आदि। इस सम्मेलन के स्मृति चिह्न के रूप में एक डाक टिकट का लोकार्पण किया गया। इस सम्मेलन में भारत सरकार के कई प्रतिनिधि तथा हिन्दी क्षेत्र के कई व्यक्ति शामिल हुए। यही नहीं, भारत मूल के तथा विदेश मूल के कई विदेशी हिन्दी विद्वान भी सम्मिलित हुए।

12 वें विश्व हिन्दी सम्मेलन का शुभंकर (लोगो) भारतीय एवं फिजी क्षेत्रों के एकीकरण का प्रतिनिधित्व करता है। 'शुभंकर' के दोनों ओर भारत और फिजी के राष्ट्रीय ध्वज के रंगों को प्रदर्शित किया गया है। बीच में कमल पुष्प है, जो भारत का राष्ट्रीय पुष्प है और पवित्रता को प्रकट करता है। यह एक ऐसा फूल है, जिसकी जड़ें भारतीय भाषाओं और देवनागरी लिपि की तरह ही गहरी हैं। अपनी जड़ों से जुड़े रहना भारत की महान संस्कृति का अभिन्न अंग है। चूँकि यह सम्मेलन फिजी के शांत द्वीप पर है, अतः इस क्षेत्र के प्रतीक के रूप में नीली लहरें व नारियल के पेड़ शुभंकर में दिखाये गये हैं।

12 वें विश्व हिन्दी सम्मेलन के मुख्य विषय 'हिन्दी पारंपरिक ज्ञान से कृत्रिम मेधा तक' तथा उपविषयों पर विविध सत्रों में चर्चा संपन्न हुई। 15 फरवरी को उद्घाटन सत्र के बाद 'हिन्दी पारंपरिक ज्ञान से कृत्रिम मेधा तक' विषय पर संयुक्त सत्र का आयोजन किया गया। 'गिरमिटिया देशों में हिन्दी' तथा 'फिजी और प्रशांत क्षेत्र में हिन्दी' विषयों पर दो समानांतर सत्र चलाये गये। उसके बाद 'सूचना प्रौद्योगिकी और 21 वीं सदी की हिन्दी' तथा 'मीडिया और हिन्दी का विश्वबोध' विषयों पर समानांतर सत्र आयोजित किये गये। रात को भारतीय सांस्कृतिक कार्यक्रम का आयोजन रहा। सम्मेलन के दूसरे दिन यानी 16 फरवरी को पूर्वाह्न 4 सत्र आयोजित किये गये, जैसे- पहले 'भारतीय ज्ञान परंपरा का वैश्विक संदर्भ और हिन्दी' तथा 'भाषाई समन्वय और हिन्दी अनुवाद' विषयों पर दो समानांतर सत्र; बाद में 'हिन्दी सिनिमा के विविध रूपः वैश्विक परिदृश्य' तथा 'विश्व बाज़ार और हिन्दी' विषयों पर दो समानांतर सत्र। अपराह्न को 'बदलते परिदृश्य में प्रवासी हिन्दी साहित्य' तथा 'देश विदेश में हिन्दी शिक्षण-चुनौतियाँ और समाधान' विषयों पर दो समानांतर सत्र आयोजित किये गये। रात को भारतीय सांस्कृतिक कार्यक्रम आयोजित किया गया।

तीसरे दिन यानी 17 फरवरी को पिछले दो दिनों में विविध विषयों पर चलाये गये सत्रों की रिपोर्ट प्रस्तुत की गयी, जो स्वीकृत किया गया। फिर सम्मान समारोह का आयोजन किया गया। यूँ तीन दिनों के सम्मेलन की शुभ समाप्ति हुई।

भारत के सीमित भूभाग में बोली मात्र रही 'खड़ीबोली' (हिन्दी) विविध ऐतिहासिक कारणों से शनैः शनैः बढ़कर संपर्क भाषा, साहित्य भाषा राज भाषा, प्रयोजनमूलक भाषा और विदेश भाषा बनी है। 'विश्व हिन्दी सम्मेलन' तक सुदूर स्थित फिजी द्वीप में चलाया गया है। फिर भी भारतीय संविधान में संघ की राजभाषा के रूप में 14 सितंबर 1949 को स्वीकृत 'हिन्दी' के विकास में मंद गति क्यों है, यह विचारणीय है। राजभाषा हिन्दी में प्रयुक्त तकनीकी शब्द या पारिभाषिक शब्द कठिन हैं, यह इसके कारण के रूप में बताया जाता है। जैसे हमारे कर्मचारी अंग्रेज़ी में आसानी से कामकाज करते हैं वैसे हिन्दी में भी कामकाज शुरू करने से 'प्रशासनिक हिन्दी' तथा उसमें प्रयुक्त पारिभाषिक शब्द उन्हें सरल मालूम होंगे।

◆ संपादक
डॉ.पी.लता
(मंत्री, अखिल भारतीय हिन्दी अकादमी)

'कुच्ची का कानून': स्त्री के प्रतिरोध का नया सृजन

♦ डॉ. प्रिया पी

सृजनात्मकता, सर्जनात्मकता अथवा रचनात्मकता किसी वस्तु, विचार, कला या साहित्य से संबद्ध किसी समस्या का समाधान निकालने एवं कुछ नया रचने, आविष्कृत करने की प्रक्रिया है और संवेदना भी है। प्रचलित ढंग से हटकर किसी नये ढंग से चिंतन करने तथा कार्य करने की योग्यता ही सृजनात्मकता है। सृजनात्मक व्यक्ति हमेशा किसी भी माहौल में नवीन ढंग से जीवन जीता है। यह सहज भावनाओं से उद्भूत है। लेकिन उत्तराधुनिक दौर में पहुँचते-पहुँचते वह संवेदना से हटकर बौद्धिकता की ओर अग्रसर है। अतः संवेदना की कमी के कारण उत्तराधुनिक मानव भी संबन्धों की गरिमा से हटकर उससे मिलनेवाले लाभ की ओर देखते हैं। समकालीन दौर के उपन्यास के बारे में हिन्दी के शीर्षस्थ आलोचक डॉ.नामवरसिंह जी का कथन विचारणीय है "इस दौर में उपन्यास महज साहित्यिक संरचना न रहकर एक सामाजिक संरचना के रूप में भी अधिक पुष्ट और समृद्ध हुआ है।"[1] सन् 2015 के 'तद्भव' में प्रकाशित हिन्दी के लब्धप्रतिष्ठ रचनाकार शिवमूर्ति का उपन्यास 'कुच्ची का कानून' इसी सामाजिक संरचना का प्रमाण है। स्वयं शिवमूर्ति का कथन है कि "सिद्धान्तों से जीवन नहीं बना, जीवन से सिद्धान्त बने हैं।.....कभी-कभी मुझे लेखन की एब्सर्डिटी भी महसूस होती है... कि ज़्यादा लिख करके भी क्या होगा? इसलिए वही लिखूं जिसे लिखते हुए सुख मिलता है।"[2] इस कथन से स्पष्ट है कि शिवमूर्ति भले ही उत्तराधुनिक दौर का लेखक है, फिर भी वे स्वतंत्र दृष्टिकोण रखनेवाले मानवीय एवं संवेदनशील व्यक्ति है।

राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त जी की 'आँचल में है दूध और आँखों में है पानी वाली नारी' से संघर्ष एवं सहन के रास्ते से गुज़रती हुई उत्तराधुनिक स्त्रियाँ कठोपनिषद मंत्र 'उत्तिष्ठता जाग्रता प्राप्यवरान्निबोधता' की ओर अग्रसर हो रही है। स्त्री का प्रतिरोध इसका एक ज्वलंत नमूना है। प्रतिरोध से वे अस्मिता को बरकरार रखने की कोशिश करती हैं, साथ ही अपने कर्तव्य के प्रति सजग होकर अधिकार के प्रति भी वे सचेत दीखती हैं। महादेवी वर्मा के अनुसार "हमारी मानसिक दासता, मानसिक तंन्द्रा के दूर होते ही,न कोई वस्तु हमारे लिए अलभ्य रहेगी, न कोई अधिकार दुष्प्राप्य। कारण,अपने स्वत्वों से परिचित व्यक्ति को उनसे वंचित रख सकना कठिन ही नहीं असंभव है।"[3] जहाँ तक स्त्री विमर्श का सवाल है चाहे प्रतिरोध हो या अस्मिता की खोज दोनों सकारात्मक है। भारत की ही नहीं, विश्व के महान दार्शनिक स्वामी विवेकानन्द जी के अनुसार 'एक आदर्श राष्ट्र का विकास तभी संभव है जब वहाँ की स्त्रियाँ शक्तिशाली बन जाय।' भारत आर्थिक, सामाजिक प्रौद्योगिकी आदि में जितने भी विकास करे तो भी स्त्रियाँ अभी भी पुरुष संचालित कानून एवं मान-मर्यादाओं से और उनके द्वारा निर्धारित समाज से घिसी-पिटी जी रहीं हैं। ऐसे राष्ट्र को विकसित मानना संभव एवं संगत नहीं है। अतः स्त्री का संघर्ष एवं प्रतिरोध सिर्फ स्त्री के लिए ही ज़रूरी नहीं है, बल्कि समाज को संयमित और विकसित करने के लिए भी ज़रूरी है। उस दृष्टि से देखें तो हिन्दी साहित्यकार निर्मला जैन का कहना निराधार नहीं है कि स्त्री की स्थिति को संवारने के लिए पुरुष को भी साथ देना चाहिए। इस अर्थ में 'कुच्ची का कानून' नामक उपन्यास का अध्ययन अवश्यंभावी है। यद्यपि स्त्री के प्रतिरोध का सवाल पुरुष लेखक शिवमूर्ति के द्वारा ही उठाया गया है जिनको स्त्री की कहानी कहने में स्वानुभूति की कमी लगेंगे ही, फिर भी स्वानुभूति से बढ़कर सहानुभूति व संवेदना को मानेंगे तो यह कृति समाज को कटघरे में रखनेवाली है। महादेवी वर्मा का कथन कि पुरुष के द्वारा नारी का चरित्र अधिक सत्य नहीं।..... "पुरुष के लिए नारीत्व अनुमान है, परन्तु नारी के लिए अनुभव।अतः अपने जीवन का जैसा सजीव चित्र वह

हमें दे सकेगी वैसा पुरुष बहुत साधना के उपरान्त भी शायद ही दे सके।"[4] लेकिन इस उपन्यास को अपवाद के रूप में लेना होगा, क्योंकि कुच्ची ऐसी एक नारी है जो सातवीं कक्षा की पढ़ाई से पूरे नारी वर्ग के लिए प्रतिरोध का मार्ग प्रशस्त करके अपनी अस्मिता की तलाश में लक्ष्य तक निर्भय से रही थी।कुच्ची ने पूरी भारतीय स्त्रियों में प्रेरणा एवं विश्वास भरने में सफलता हासिल की है। समाज कुच्ची को छिनाल ,अहंवादी या कुछ भी कहे, पर कुच्ची तो तार्किक बुद्धिवाली, सहज,धीर एवं बिन्दास है। एक लड़की होने के नाते ये सब गुण अवश्यंभावी हैं। परिस्थिति से कभी भी मुँह मोड़कर वह भागती नहीं, बल्कि वह उसको पूरी तरह समझकर प्रतिरोध करती हुई सुलझाव के रास्ते को ढूँढ निकालती है। भारतीय समाज खासकर उत्तर भारतीय समाज में यह प्रतिरोध असंभव सा लगेगा। पर कुच्ची हर स्त्री के लिए प्रेरणा एवं मार्गदर्शक है। समाज स्त्री और पुरुष को दो प्रकार से मानता है और उन दोनों के कर्म की समालोचना या समीक्षा दो कसौटी पर कसता है। स्त्री एवं पुरुष की गलती पर दंड विधान अलग से देने की रीति पुराने ज़माने से लेकर आज भी ज़ारी है। इस बात को एवं स्त्री के संघर्ष को सामने लाने की कोशिश में कथाकार सफल निकले हैं। 'अपना एक कमरा' में वर्जीनिया वुल्फ का कहना ध्यातव्य है कि "पुरुष बस इसलिए योग्य हैं, क्योंकि वे स्त्री नहीं हैं।" [5]कुच्ची एक विधवा नारी है जो पति के दूर के रिश्तेदार भाई के द्वारा किये गये षड्यंत्र के कारण शादी के कुछ महीनों के बाद विधवा बन गयी थी। वह हत्यारा भाई बनवारी, पति की संपत्ति एवं कुच्ची को हड़पने व बूढ़े माँ-बाप को कत्ल करके सारी जायदाद पर कब्जा करने की साजिश रचता जा रहा था जिसका समय-समय पर कुच्ची अपनी सास ससुर की सहायता से और तार्किक बुद्धि से प्रतिरोध करती है। वास्तव में यही इसका वर्ण्य विषय है जो पचास पृष्ठों में कुतूहलता, प्रेरणा एवं रोचकता के साथ पाठकों को उत्साहित करता है। कुच्ची अपने लक्ष्य के लिए जिन संघर्षों से गज़री है, वास्तव में आम भारतीय स्त्री की यही नियति है। कृत्रिम बीज से माँ बनने का निर्णय अगर कुच्ची नहीं लिया होता, तो कुच्ची के साथ उनके सास-ससुर का भी जीना दूभर हो जाता। वह निर्णय तीनों जन केलिए अमृत जैसा था जिससे वे सुरक्षित जी सके। स्त्री का प्रतिरोध एक प्रकार से सिर्फ उसी की सुरक्षा की बात नहीं है, बल्कि उस समाज के लिए भी जिसमें वह रह रही है।

बनवारी समाज के ऐसे घटिया पुरुषों का प्रतिनिधि है जो स्त्री के प्रति घिनौने एवं अनैतिक व्यवहार करने के लिए हिचकते नहीं हैं। "बजरंगी की लाश चिता पर रखने के साथ ही किसी चोर दरवाज़े से बनवारी के मन में यह बात आयी थी कि अब बजरंगी की खेतीबारी, घर-दुआर पर उसी का हक है।"[6] सारी संपत्ति को हड़पने के साथ-साथ वह कुच्ची को भी तंग करता रहता था। जब कुच्ची को मालूम हो गया कि कुच्ची के मैके जाने के बाद बनवारी अपने सास-ससुर की भी हत्या करके सारी संपत्ति पर कब्जा करेगा। तभी उसने निर्णय लिया कि उत्तराधिकारी के रूप में एक बच्चे की ज़रूरत है। अतः उसने निर्णय लिया कि वह माँ बनेगी और बच्चे के साथ ससुराल में ही रहेगी। कुच्ची का यही निर्णय गाँव में गर्मागरम हो हल्ला मचाता है। बनवारी गाँववालों को कुच्ची के विरुद्ध भड़काने की कोशिश करता है, पर अपने अंतर्मन की शक्ति से वह प्रतिरोध एवं संघर्ष करती हुई अपने मंजिल तक पहुँच जाती है और बनवारी पराजित हो जाता है।

गाँव के पंचायत में कुच्ची और वहाँ की सभा के बीच के संवाद ही 'कुच्ची का कानून' उपन्यास का इतिवृत्त है है। अतः शीर्षक बहुत ही समीचीन है, क्यों कि यह कानून कुच्ची का अपना है। सत्य की विजय को दर्शाकर शिवमूर्ति जी ने इस रचना के द्वारा एक प्रकार की सकारात्मकता को भर दिया है, जो समकालीन निराश- हताश समाज के लिए बहुत ज़रूरी है। नासिरा शर्माजी ने भी अपने उपन्यास 'ठीकरे की माँगनी' की महरुख के माध्यम से कहलवाया है कि "औरत को बनाते हुए खुदा ने कोख तो उसी के वजूद से बनाई है, अपने बाद सृष्टि का अधिकार उसे ही दिया है। फिर उसका श्रेय मर्दों के नाम पर किसने चढ़ा दिया है।"[7]

इसी प्रकार कुच्ची भी पंचायत से पूछती है "जब मेरे हाथ, पैर, आँख, कान पर मेरा हक है, इन पर मेरी मरजी चलती है तो कोख पर किसका होगा,उस पर किसकी मरजी चलेगी,इसे जानने के लिए कौन सा कानून पढ़ने की ज़रूरत है।"[8] प्रसिद्ध कवयित्री अनामिका अपनी कविता 'बेजगह' में कहती हैं कि "लडकियाँ हवा धूप, मिट्टी होती है/उनका कोई घर नहीं होता/जिनका कोई घर नहीं होता /उसकी होती है भला कौन सी जगह। पर कुच्ची का ऐलान कि कुंती माई डर गयीं, अंजनी माई डर गयीं, सीता की माई डर गयीं लेकिन बालकिसन की माई डरनेवाली नहीं है। मेरा बालकिसन पैदा होकर रहेगा।"[9] यह एक प्रकार से नगाड़े की तरह बजनेवाला शब्द ही है। जैसे संथाली कवयित्री निर्मला पुतुल जी की कविता ऐलान करती है कि "चाहती हूँ मैं /नगाडे की तरह बजे/मेरे शब्द/और निकल पडे लोग/अपने अपने घरों से सडकों पर"। इन प्रतिरोधों की गूँज से समाज को जाग उठना ही है जो समकालीन समाज केलिए महत्वपूर्ण एवं ज़रूरी है। इस संदर्भ में शिवमूर्ति के बारे में शीर्षस्थ आलोचक डॉ.विश्वनाथ त्रिपाठी का कहना भी विचारणीय है कि "उन्होंने स्त्री के शोषण को कई स्तरों पर देखा है। उन्होंने उसके शोषण की वह पीड़ा भी लिखी है जिसे वह अपने ही परिवार में अपने ही लोगों के कारण झेल रही हैं। इसलिए मैं कहूँगा कि उनकी कहानियों की स्त्री चरित्र बहुत प्रभावशाली हैं।"[10] कुच्ची जैसे पात्रों से जिस सकारात्मक ऊर्ज्जा का स्पन्दन समाज में हो रहा है इसको और अधिक फैलाने की कोशिश हर क्षेत्र में होना है, ताकि एक और निर्भया न हो जाय। लेखक इस उपन्यास में राजनीतिक लोग व सत्ताधारियों को भी कटघरे में खडा करता है। उनके अनुसार कानून निर्माता तो पुरुष वर्ग ही है, पर कभी किसी स्त्री की सहायता करने केलिए तथाकथित सरकार तैयार नहीं होती है। प्रापर्टी के मामले में भी सरकारें पुरुष की सहायता करती हैं। चिकित्सा के क्षेत्र में हो रहे भ्रष्टाचार एवं डाक्टरों की अनैतिक व्यवहारों पर अन्य कई कहानियों की तरह इसमें भी जिक्र है। जब कुच्ची की सास के जांघ की हड्डी टूट गयी तब अस्पताल में ले जाने के बाद वहाँ की लापरवाही पर भी कुच्ची प्रतिक्रिया जताती हुई समय पर हस्तक्षेप भी करती है। सास को अस्पताल में भर्ती करने के बाद भी डाक्टर को घूस नहीं देने से वे लोग कुछ भी नहीं करते हैं। मरीज को देखने व ओपरेशन कराने के लिए वे तैयार नहीं हैं। सही कहा था नर्सिंग होम के दलाल ने। पैसा न पाने के चलते डाक्टर तीन दिन तक ओपरेशन टालता रहा।.....सारे मरीज़ पैसा दे रहे थे। तय हुआ कि देने में ही भलाई है।ओपरेशन के पहले शाम को दस हज़ार गिनने पडे। रोड भी उसी दुकान से खरीदना पडा जहाँ से डाक्टर ने कहा था।"[11]यही हमारी भ्रष्ट व्यवस्था की रीति है। इस पर भी अकेली होकर कुच्ची प्रतिरोध करती है। अस्पताल में ज़हर खाकर एवं जलकर लानेवाली लड़कियाँ भी कम नहीं हैं। इन दोनों प्रवृत्तियों के लिए बेड रिज़र्व करके रखा हुआ है।अर्थात् लेखक का कहना है कि रोज़ गाँव से ऐसी औरतों को लाना स्वाभाविक सा है। इस बड का नाम ही हैप्वाइजन बेड। ज़हर खाकर आनेवाली औरतों के लिए रिज़र्व। रोज़ इसी समय कोई न कोई आती है.....सिर्फ औरतें। आदमी एक भी नहीं। सब बीस पचीस साल की उम्रवाली। ज़्यादात्तर सल्फास खाकर।.....[12] इसके साथ लेखक ने स्त्रियों पर हो रहे अन्य अत्याचारों पर भी हमें अवगत कराया है।"[13] कुच्ची सास के साथ अस्पताल में रहकर इन सबको देख दुःखी तो थी। पर इन सबसे डरकर भागने से वह प्रतिरोध करने की सोच में थी। इसलिए ही वह निर्भयता से गाँव के पंचायत में अपना कानून पेश कर सकी। कुच्ची का सवाल है कि "मेरी गोद भरने से, मुझे सहारा मिलने से गाँव की नाक कैसे कट जायेगी बाबा।....जब मेरी भूख पूरे गाँव की भूख नहीं बनती, मेरा डर पूरे गाँव का डर नहीं बनता,मेरा दुःख दर्द पूरे गाँव का दुःख दर्द नहीं बनता तो मेरे किये हुए किसी काम से पूरे गाँव की नाक कैसे कट जायेगी।" 14 इन्हीं अभिशापों से स्त्रियाँ सालों से जी रही हैं जिससे मुक्ति चाहकर भी मिलता नहीं है।

भारतीय गाँव का चित्रण भी इस कृति को यथार्थ एवं आदर्श बनाता है। क्योंकि भारत सूचना एवं

प्रौद्योगिकी में जितना आगे बढ़ रही है, पर इसमें गाँव की स्थिति का ब्योरा, जो काल्पनिक या झूठ नहीं , सच्चाई का छोटा सा अंश ही कह सकते है। जहाँ आज भी बिजली नहीं है और पीने के पानी के लिए एक या दो नल की सुविधा है। ऐसे में स्त्री की स्थिति के बारे में कहना निराधार नहीं है। कुच्ची जैसी स्त्रियाँ समाज को सही राह दिखाने के लिए बहुत ही सशक्त हैं। सामाजिक परिवर्तन के लिए स्त्री के प्रतिरोध व मुखरता ही सहायक एवं राह दिखानेवाले हैं। ऐसे में यह कहना निराधार व अत्युक्ति नहीं है कि कुच्ची नये समाज के लिए राहगीर है।

सन्दर्भ ग्रन्थः

1.आधुनिक हिन्दी उपन्यास ,सम्पादक-डॉ.नामवरसिंह,राजकमल प्रकाशन,2010, पृष्ठ-11.
2.इन्टरनेट। कथाकार शिवमूर्ति ब्लोग से।
3.महादेवी वर्मा ,श्रृंखला की कड़ियाँ ,महादेवी साहित्य समग्र-3,वाणी प्रकाशन 2000,पृष्ठ 303-304.
4.वही, पृष्ठ72
5. वर्जीनिया वुल्फ ,अपना एक कमरा ,वाणी प्रकाशन, 2011,फ्लैप से ।
6.तद्भव,संपादक-अखिलेश,पूर्णांक 32,लखनऊ उत्तरप्रदेश; 2015 अक्तूबर, पृष्ठ संख्या 92
7.नासिरा शर्मा,ठीकरे की माँगनी, पृष्ठ 20 गोपाल राय
8. तद्भव, संपादक- अखिलेश,पूर्णांक32, लखनऊ उत्तर प्रदेश, 2015 अक्तूबर, पृष्ठ संख्या 131.
9. वही,पृष्ठ संख्या 135.
10. हिन्दी कथाकार (ब्लोग)-शिवमूर्ति की रचना पर अन्य लेखकों के मत। डॉ.विश्वनाथ त्रिपाठी लमही, अक्टूबर-दिसम्बर 2012 पृष्ठ. 240-241
11. तद्भव संपादक अखिलेश,पूर्णांक-32,लखनऊ उत्तर प्रदेश, 2015 अक्तबर पृष्ठ संख्या 97.
12. वही, पृष्ठ संख्या 98.
13. वही, पृष्ठ संख्या.99(बेड नं 7 बर्न बेड है।...इस पर आनेवाली औरतों में ज़्यादात्तर नवव्याहताएँ होती है। किसी की गोद में साल भर की बच्ची,किसी की गोद में छः महीने की।...कितनी बहू बेटियाँ हैं इस देश में कि रोज़ जलने और ज़हर खाने के बाद भी खत्म होने को नहीं आ रही हैं।)
14. तद्भव, संपादक-अखिलेश,पूर्णांक-32,लखनऊ उत्तर प्रदेश, 2015 अक्तूबर; पृष्ठ संख्या 121.

♦ सह आचार्य
परास्नातक हिन्दी विभाग व शोध केन्द्र,
सरकारी आर्टस व साईन्स कॉलज, कोषिक्कोड,
केरल राज्य। पिन- 673018

स्वतंत्रता आन्दोलन और हमारे आदिवासी नायक
('हुल पहाड़िया' और 'जो इतिहास में नहीं है' उपन्यासों के संदर्भ में)

♦ **डॉ. बन्ना राम मीना**

शोध सार

आदिवासी समुदाय के नायकों का गौरवशाली इतिहास क्रांतियों और आन्दोलनों का रहा है। पराधीनता से मुक्ति की लड़ाई में भी हमारे आदिवासी नायकों ने महत्वपूर्ण भूमिका निभायी है। प्रत्येक आदिवासी नायक-नायिका में अपनी मातृभूमि के प्रति प्यार की धारा प्रवाहित होती रही है, जो समय और हालातों के अनुसार उजागर होती रही है। स्वतंत्रता आन्दोलन में हमारे आदिवासी नायकों का अविकल्प अवदान विस्मृत नहीं किया जा सकता। आदिवासी समुदाय ने ब्रिटिशआधिपत्य को स्वीकार करने की मनाही की थी, और उसके खिलाफ़ बहुत सारे संघर्ष किये थे। स्वतंत्रता के इस महान महायज्ञ में अनेक आदिवासी सेनानियों ने अपना बलिदान दिया। इन सभी संघर्षों में आदिवासी नायक तिलक माँझी और भैरव मुर्मु, सिदो, चाँद और कान्हू का संघर्ष भी महत्वपूर्ण स्थान रखता है। 'हुल पहाड़िया' और

'जो इतिहास में नहीं है' महत्वपूर्ण उपन्यास हैं। 'हुल पहाड़िया' में तिलका माँझी की समर गाथा प्रमाणिक तथ्यों के साथ मौजूद है और 'जो इतिहास में नहीं है' भैरव मुर्मु, कान्हू, चाँद, हारिल मुरमू और सिदो आदि जनजातियों के अपने-अपने नायकों के साथ लड़े गये स्वाधीनता-संघर्षों को अभिव्यक्त करता है।

बीज शब्द - पहाड़िया, स्वतंत्रता, पहचान, आन्दोलन, नायक, इतिहास।

मूल आलेख

भारत की आज़ादी का संघर्ष हिन्दुस्तान के इतिहास की एक युगांतकारी घटना है। स्वाधीनता आंदोलन के प्रति आदिवासी नायकों की प्रतिबद्धता उनके आरंभिक संघर्षों से सामने आने लगी थी, जिसमें सैकड़ों आदिवासी नायकों ने बलिदान दिया है। आरंभ से ही आदिवासी समुदाय ने ब्रिटिश हुकूमत से संघर्ष शुरू किए। आदिवासी आन्दोलन और उसके नायकों के संघर्ष गुमनामी अंधेरे में रहे। आज तक "इन आन्दोलनों को जनजातीय समुदाय द्वारा औपनिवेशिक शासन के खिलाफ छेड़े गए संघर्ष के रूप में देखा जा रहा है। यह खेद की बात है कि हमारे देश में ऐसे आन्दोलनों पर, प्रचुर सामग्री रहते हुए भी, कम ही काम हुआ है।"[1] इस प्रकार जनजातीय क्षेत्रों में अंग्रेज़ों के खिलाफ हुए आन्दोलनों और उसके नायकों को सामने लाना बेहद ज़रूरी है। "स्वाधीनता आंदोलन में अंग्रेज़ों के विरोध में लड़नेवाले बिरसा मुण्डा, तिलका माँझी, भागोजी नाईक, तंटया भील आदि वीरों ने अपना जीवन न्योछावर कर दिया। लेकिन इन क्रांतिकारी वीरों की गाथा इतिहास में नहीं आई।"[2] इन आन्दोलनों की विशेष बात यह थी कि सभी स्वाधीनता आंदोलन जनजातीय समाज के नेतृत्व में लड़े गए थे। सन् 1831 का कोल विद्रोह भी इसी श्रेणी में आता है। यह मानने में कोई हर्ज नहीं है कि भारत में आज़ादी के लिए संघर्षों की शुरुआत सन् 1763 में हुई। विद्वानों द्वारा उसके साक्ष्य समय-समय पर प्रस्तुत भी किए गए हैं। "स्वतंत्रता के लिए आदिवासी समुदाय के संघर्ष को शुरुआत में इतिहासकारों की नज़रों से भले ही ओझल रहना पड़ा, परन्तु तत्पश्चात् वे भी उनके योगदान को मानने पर विवश हुए।" [3] जनजातीय समुदाय के नायकों के साथ भारतीय इतिहासकारों ने ठीक वैसा ही सलूक किया जैसे मैथिलीशरण गुप्त के पूर्व महान चिंतकों/लेखकों ने उर्मिला के साथ किया। कथाकार ने यहाँ उन नायकों को महत्व देकर नवीन इतिहास-सृजन के लिए प्रस्थान बिन्दु तलाशे हैं जो आदिवासी नायक इतिहास से बेदख़ल हैं। स्वतंत्रता की लड़ाई में आदिवासी नायकों के अवदान को गंभीर शोध के ज़रिए सामने लाने का प्रयास किया गया है। इनके उपन्यासों में भूले-बिसरे इतिहास और भ्रांतियों को दूर करने का प्रयास भी है।

हुल पहाड़िया और तिलका माँझी

राकेश कुमार सिंह ने जनजातीय जीवन के भिन्न-भिन्न आयामों को अपने साहित्य में प्रस्तुत करते हुए अपनी अलग पहचान बनाई है। कथाकार अपने उपन्यास 'हुल पहाड़िया' की रचना-प्रकिया से गुज़रते हुए, स्वाधीनता आंदोलन में आदिवासी नायक के संघर्ष की कथा कहते हैं। स्वाधीनता-संघर्षों के भयावह यथार्थ से साक्षात्कार करवाते हैं। उपन्यास में यथार्थ किरदारों के कारण वह पाठक समुदाय के दिल में घर कर लेते हैं, और दूसरी तरफ़ उस दौर के राजनीतिक और सामाजिक यथार्थ की ऐसी तस्वीर दिखाते हैं, जो जनजातीय समाज के प्रति हमारी मानसिकता और व्यवहार पर पुनर्विचार करने को मज़बूर करती हैं। पहाड़िया जनजातीय समाज के प्रति रचनाकार की गहन संवेदना एवं उनकी अनुभवजन्य दृष्टि उपन्यास में दिखलाई पड़ती है। आदिवासी पहाड़िया समाज की स्वाधीनता-संघर्ष में भागीदारी को लेकर उनकी दृष्टि बड़ी व्यापक और सुस्पष्ट है। स्वाधीनता की लड़ाई को मज़बूत बनाने के लिए स्वतंत्रता सेनानी तिलका माँझी ने जनजातीय संगठनों पर ज़ोर दिया। अपने लोगों और भूमि की रक्षा के लिए दृढ़ संकल्प तिलका ने आदिवासियों को धनुष और तीर के उपयोग में प्रशिक्षित एक सेना में संगठित किया। सन् 1771 से 1784 तक तिलका ने औपनिवेशिक सत्ता के सामने आत्मसमर्पण नहीं किया। वे लगातार अंग्रेज़ों के साथ लड़ाई लड़ते रहे। इसका नतीजा यह रहा कि अंग्रेज़ों के अपने शासन विस्तार अभियान को

उनके द्वारा ज़बरदस्त विरोध का सामना करना पड़ा। जनजातीय नायकों ने ब्रिटिश विस्तारवादी नीतियों को कड़ी चुनौती दी, जिससे अंग्रेज़ों को भारी नुकसान हुआ।

अंग्रेज़ शासन-प्रशासन ने सन् 1785 के हुल आन्दोलन (हूल आन्दोलन) को दबाने का हर संभव प्रयास किया। इस आन्दोलन को सरकारी अभिलेखों में भी जानबूझकर दर्ज नहीं होने दिया। अभी कुछेक दशक से स्थानीय साक्ष्यों ने कुछ इतिहासकारों को तिलका माँझी के जीवन और स्वतंत्रता आन्दोलन में उनकी भूमिका पर लिखने के लिए मजबूर किया है। 'हुल पहाड़िया' उपन्यास इतिहास में फैली सभी भ्रांतियों को दूर करता है। पूरे प्रमाण और तथ्य के साथ इस बात को साबित करता है कि आदिवासी नायक तिलका माँझी पहाड़िया था और जिसका एक नाम जवरा पहाड़िया था, जिसे अंग्रेज़ों ने अपने अभिलेख में एक डाकू के तौर पर दर्ज किया है और हिलरेंजर्स का कमांडर के तौर पर भी। रचनाकार तथ्यात्मकता से तिलका माँझी पर पड़े कुहासे को हटाते हैं। "फिर एक पहाड़िया युवक माँझी की उपाधि का अधिकारी बन गया। जबरा पहाड़िया से जबरा माँझी। यही था तिलका माँझी! माँझी दरअसल झारखंड के संथाल आदिवासियों का एक गोत्र भी है, इसलिए तिलका बाबा के साथ यह भ्रम जुड़ गया कि वह संथाल था। प्रोफ़ेसर की बात में राजेंद्र ने कुछ और जोड़ा जैसे पहाड़िया लोगों के भी तीन गोत्र ज्ञात हैं। माल पहाड़िया, कुमार पहाड़िया, और सौरिया पहाड़िया। ठीक कहा राजेंद्र! परंपराओं की रौशनी में इतिहास के गठन में सुधार और संशोधन नहीं किए जाते तो भ्रम ही रूढ़ बन जाते हैं। यदि नए साक्ष्य पुरानी स्थापनाओं के विरुद्ध गवाही दें तो इतिहास के पुराने मॉडल अस्वीकृत भी..ज़रूरत हो तो ख़ारिज भी किए जाने चाहिए।" [4] निष्कर्ष यह निकलता है कि तिलका माँझी संथाल नहीं बल्कि पहाड़िया था और वह विदेशी हुकूमत के विरोध में एक जुझारू स्वतंत्रता सेनानी था।

जिन पहाड़िया क्षेत्रों में ब्रिटिश कंपनी का कब्ज़ा हुआ, वहाँ उसने जनजातीय समुदाय की ज़िन्दगी और ज़रूरत को सिरे से नज़रअंदाज़ कर दिया। पहाड़िया जनजातीय इलाकों में अंग्रेज़ हुकूमत द्वारा जो ज़ुल्म और सितम किए गए थे, इसके खिलाफ़ बगावत शुरू हुई और इस संघ का नेतृत्व तिलका माँझी ने किया। "घाटियों से उठती हूल-हूल की चीखती प्रतिध्वनियाँ तेलियागढ़ी दुर्ग के कोटे-परकोटे से टकरा रही थीं। शत गुनित होकर धरती से आकाश तक प्रतिध्वनित हो रहा था। विद्रोह, विद्रोह! जिए जिए बाबा तिलका जिए जिए हूल! विक्षिप्त की भाँति दमामा पीटने लगा था तिलका माँझी। पागलों की भाँति नाच रहा था मांदल बजाता फागुन पहाड़िया। अशांत हो उठी थी घाटी। अशांत था अरण्य। अशांत थे पहाड़, चट्टानें। हर ओर वही अनहद नाद..हुल-हुल-हुल!" [5] अंग्रेज़ों को भगाना इस हुल पहाड़िया आन्दोलन का लक्ष्य था। तिलका माँझी के मस्तिष्क में सामूहिक उत्प्रेरक कारण या सामूहिक लक्ष्य या सामूहिक स्वप्न मौजूद था। इसके लिए वह अंग्रेज़ों के विरोध में सभी पहाड़िया जनजातीय समाज को संगति होने का आह्वान भी करते हैं। ' 'उन पहाड़ों की ओर, जहाँ बाबा तिलका माँझी के हुल का दमामा बज रहा था। जहां सबसे ऊंचे पर्वत शिखर पर हुल की आग जलाए बाबा तिलका माँझी समस्त पहाड़िया जाति का आह्वान कर रहा था। "[6] तिलका ने वास्तविक और व्यापक हुल आन्दोलन की ज़रूरत और महत्व को समझकर हुल आन्दोलन में जन-जन की भागीदारी सुनिश्चित की। उन्होंने सभी पहाड़िया समाज को अपने आन्दोलन में हिस्सा लेने के लिए प्रेरित किया। इससे अंग्रेज़ों पर उनके इलाकों को छोड़ने के लिए व्यापक दबाव भी बनाया गया। तिलका ऐसी व्यवस्था निर्मित करना चाहता था, जिसमें कम से कम जानें खोनी पड़ें। मरण या विजय युद्ध के अनिवार्य सत्य हैं, परंतु न्यूनतम हानि के साथ सफलता सेनानायक के प्रबंधन, युद्धकौशल और चातुर्य की परीक्षा होती है।"[7]

तिलका माँझी जनजातीय समुदाय की आशा-आकांक्षाओं की कसौटी पर खरा उतरा और क्लीवलैंड को अपने परंपरागत हथियार से हमला कर घायल कर

दिया। "पराजय और अपमान के कड़वे घूँट घोटता भगोड़ा क्लीवलैंड सोच रहा था, क्या लिखेगा अपनी दैनिक पत्रिका में? यही कि भागलपुर राजमहल का कलैक्टर आगस्टस क्लीवलैंड, जो पूरी तैयारी के साथ तिलका माँझी का दमन करने निकला था, जंगलियों के रण कौशल के आगे नाकारा साबित हुआ था?"[8] ब्रिटिश हुकूमत से लड़ते हुए अपनी माटी, ज़मीन और इलाकों को बचाने के लिए तिलका माँझी शहीद हो गया। उन्होंने हुल आन्दोलन से अपने समाज का अस्तित्व बचाया। आख़िरकार आदिवासी नायक तिलका माँझी को भी सड़क के किनारे चौराहे पर पेड़ से लटका कर मार दिया गया था। "11 फ़रवरी 1785 को तिलका माँझी को अंग्रेज़ों द्वारा फाँसी पर लटका दिया गया, पर तिलका के बाद भी हुल चलता रहा, अगले बहुत समय तक! पहाड़िया तुष्टिकरण की खलनीति के अंतर्गत ब्रिटिश ईस्ट इंडिया कम्पनी ने सन् 1894 में जबरा के नाम पर एक सिक्का जारी कर पहाड़िया विद्रोह को शांत करने का विफल प्रयास किया।" [9] कुलमिलाकर हम कह सकते हैं कि उपन्यासकार ने बड़ी लगन से स्वतंत्रता सेनानी तिलका माँझी की मुक्तिकामी चेतना के साथ उस दौर के पहाड़िया समाज के जन्म से लेकर मृत्यु तक के जीवन-संघर्षों और पहाड़िया जनजातीय समाज की अपने समय में ज़रूरी हस्तक्षेप की शौर्य गाथा का बेहतरीन चित्रण किया है।

इतिहास के पन्नों में गायब आदिवासी नायक

'जो इतिहास में नहीं है' में इतिहास में गुमनाम आदिवासी नायकों के हूल आन्दोलन और उनकी शौर्य गाथा को सामने लाया गया है। ब्रिटिश हुकूमत ने तो हर तरह से उन्हें अपमानित और प्रताड़ित किया। इसके अलावा आदिवासी समुदायों को लोकल ज़मींदारों से भी संघर्ष करना पड़ा था। उपन्यास में नील की खेती का ज़िक्र किया है। यही नील की खेती जनजातीय क्षेत्रों में हूल आन्दोलन का प्रमुख कारण बनती है। "कौरेया, आसनबनी, साहेबगंज, राजमहल, प्यालपुर, बेलपता, गोडडाः जगह-जगह आदिवासियों के रक्त-स्वेद से नीलहे साहबों की भव्य कोठियाँ ख़डी हो चुकी थीं। हर ऐसी काछी की नींव लगा था उराँव, संथाल या मुंडा का हाड़मांस। शबर, बिरहोर या हो लोगों का रक्त। आदिवासियों की आनेवाली पीढ़ी का भविष्य दबाया गया था नींव के नीचे।"[10] अंग्रेज़ों के द्वारा जंगल नष्ट किए जाने के कारण जंगलों, घाटियों में स्थानीय स्तर पर आदिवासी समाज का जीवन विश्रृंखलित हो रहा था। उनको अंग्रेज़ों की शोषणवाली संस्कृति में प्रवेश कर अपना जीवन जीना पड़ रहा था। ऐसे माहौल में आदिवासी नायक हारिल मुरमू अंग्रेज़ों से संघर्षरत रहता है।

इतिहास में सभी साक्ष्य मौजूद है जिसके आधार पर कह सकते हैं कि स्वाधीनता आंदोलन शुरू होने से सौ साल पहले ही अपने आदिवासी नेतृत्व ने अंग्रेज़ों की नाक में दम कर रखा था। इस तरह से जहाँ-जहाँ आदिवासियों ने अपने नेतृत्व में संघर्ष किया वहाँ उन्हें अपार सफलता मिली। ईस्ट इंडिया कम्पनी के शोषण और अत्याचार से त्रस्त आदिवासी समुदाय ने मुक्ति संग्राम का पहला बिगुल बजा दिया। "अंग्रेज़ी सत्ता के किले पर प्रथम हथौड़े की चोट पड़ चुकी थी। ग्राम-ग्राम घूमने लगी थी सखुए की डाली। संथाल लड़ाका सिदो मुरमू की आवाज़ हर गाँव-गली तक पहुँचने लगी थी। अंग्रेज़ों को भारत से भगाने की पहली जनक्रांति शुरू हो चुकी थी, जिसका पहला गोला संथालों ने दाग दिया था।"[11] ब्रिटिश हुकूमत उनके जंगल और ज़मीन पर अपना कानून थोपते गए और इन्हीं स्थितियों-परिस्थितियों के चलते हूल आन्दोलन तेज़ रफ़्तार पकड़ता गया। समय की माँग को देखते हुए कान्हू सिदो के नायकत्व को सामूहिक तौर पर स्वीकृति मिल जाती है। सभी सामूहिक रूप से फ़ैसला लेते हैं कि हमारे ऊपर कोई सरकार नहीं है, हाकिम नहीं है, थानेदार नहीं है। हमारी स्वायत्त शासन व्यवस्था स्थापित हो गई है। अपने ऊपर होते शोषण के विरुद्ध अपने परंपरागत हथियार तीर, कमान, बााण, भाला, फरसा उठाकर दिकुओं को अपनी ज़मीन और इलाकों से खदेड़ना ज़रूरी है। "हमारा अपना सूबा होगा। कोपनी गुरमेंट को अपने ऊपर नहीं मानेंगे हम। अबुआ राज का सूबा ठाकुर होगा हमारा

सिदो। सबा ठाकुर की अगुवाई में जंगल समाज के सारे गाँवगोत्र तीरधनुष उठावें। टाँगी, भाला, फरसा, बलोया..उठावें। जंगल से सारे दीकू लोगों को भगावें हम, तभी चैन से जीएंगे हम। चैन से रहेंगे हमारे धियापुता।:हमारा आशीष है:हूल करो।"[12]

सिदो की एक जनजातीय समुदाय का प्रतिनिधित्व करने वाले वीर शूरवीर की छवि कथाकार ग़ढता है। "संथालों का सूबा ठाकुर सिदो मुरमू मध्यम कंद वाला खूब कसी काठी का जवान था। घामबरखा खाया हुआ पक्के देवदार के तने जैसा रंग और परिश्रमी कोर मांसपेशियाँ! दोहरी कर धोती बाँधे था सिदो मुरमू।"[13] सिदो के नेतृत्व में चमत्कार करने वाली सांगनिक क्षमता है। इनके नेतृत्व के चलते हूल की सफल शुरुआत की गई। रचनाकार के अनुसार हूल की आरंभिक सफलता को उन्नीसवी शताब्दी के ग़दर का पहला आग़ाज़ भी मान सकते हैं। संथाल हूल के पीछे कहीं न कहीं अंग्रेज़ों और महाजनों का शोषण ही मुख्य कारण रहा है। साहूकारों, दलालों, ज़मींदारों और अंग्रेज़ों के लगातार शोषण ने आदिवासी नेतृत्व को आरपार की लड़ाई लड़ने को मजबूर किया। "नगाड़े और ज़ोर से बजने लगे थे। आदिवासी लोग तो आत्महत्या को प्रस्तुत हैं और ऐसे आत्मघाती आक्रामक लड़ाकों को रोकना हमारी वेतनभोगी सैन्य टुकड़ी के लिए कनि बात है। मुझे कंपनी सेना फ़िलहाल आदिवासी आक्रमण को रोक पाने की स्थिति में नहीं लगती। भैरव मुरमू के लड़ाके अंग्रेज़ों पर भारी पड़ रहे थे।" [14] 15 जुलाई 1855 में सिदो, कान्हू, चाँद और भैरव मुर्मु नामक चार सहोदर संथालों ने हूल नाम से क्रांति का नगाड़ा बजा दिया। आदिवासी समुदाय को अपने स्थानीय अधिकारों और स्वतंत्रता के प्रति रुचि और उत्साह था। संथाल विद्रोह व्यापक जन विद्रोह भी था। "मि.हेस्टिंग्स ने सोचा था तीर, तलवार,भाले, बरछे और हसिये जैसे परंपरागत अस्त्रशस्त्रों से लैस आदिवासियों की आक्रमक टुकड़ियों को अंग्रेज़ी बंदूकों से उग्रलती गर्म बारूद अवश्य रोक लेगी। लगातार युद्ध के नगाड़े बजाते, तीर फेंकते और धारदार हथियार भॉजते आगे बढ़ते जंगलियों को रोकने का विफल प्रयास करता हेस्टिंग्स विक्षिप्तों की भाँति चीखने लगता था।" [15] यह एक सबसे बड़ा जनआन्दोलन था। करो या मरो का पहला नारा यही लगा था। दस हज़ार से भी ज़्यादा संख्या में लोग इस आन्दोलन में शहीद हुए थे। जिसमें सिदो और कान्हू मूर्मू और उनके दो भाई और दो बहनों को सरेआम फाँसी दी गयी थी। वीरता और क़ुर्बानी की इस मिसाल को कार्ल मार्क्स ने नोट्स ऑफ़ इंडियन हिस्ट्री में भारतीय स्वतंत्रता-संग्राम की प्रथम जनक्रांति कहा है। रूपचंद वर्मा ने भी इसे सन् 1857 की महान क्रांति के पूर्व का प्रथम स्वतंत्रता-संग्राम कहा है।"[16] तत्कालीन समय में इन विद्रोह को दबाने की विराटता को अभिलेखों में दबाने की पूरी कोशिश की गई। इतिहास अपने पन्ने पर भारतीय समाज की अटल सच्चाई को अंकित करना भूल गया। यहाँ सृजक ने देश के लेखकों एवं इतिहासकारों को इतिहास के झरोखे में झाँकने तथा भुला दिए पन्नों को फिर से याद कराया है।

निष्कर्ष

अपने-अपने इलाकों में हज़ारों आदिवासी नायक अंग्रेज़ों के खिलाफ नगाड़ा बजाकर स्वतंत्रता आन्दोलन की क्रांति के पहले अग्रदूत बने। तिलका माँझी और भैरव मुर्मु, कान्हू, चाँद, हारिल मुरमू जैसे आदिवासी समुदाय के नायकों ने अंग्रेज़ों के खिलाफ हर स्तर पर खूब संघर्ष किया। यह समुदाय अपने परंपरागत हथियारों से अंग्रेज़ों से लड़ते हुए शहीद हुए थे। हूल आन्दोलन में शहीद हज़ारों आदिवासी समुदाय के नायकों की शौर्य गाथा उपन्यासों में प्रामाणिक तथ्यों के साथ दर्ज है। अनेक आदिवासी नायकों ने स्वतंत्रता आन्दोलन में अपना खून बहाया। मगर इतिहास के पन्नों में कोई आदिवासी स्वतंत्रता सेनानी है, ऐसे स्वर बहुत कम दिखलाई पड़ते हैं। इन दोनों उपन्यासों ने चिंतकों/लेखकों/इतिहासकारों को इतिहास के पन्नों को दुबारा पलटने पर विवश किया है।

(शेष पृ.सं. 34)

'कबिरा खड़ा बाज़ार में' नाटक में सामयिक संदर्भः कुछ झांकियाँ

♦ डॉ.लता डी

बीसवीं सदी के सफल हिन्दी कथाकार, नाटककार एवं रंगकर्मी श्री भीष्म साहनीजी अपनी संवेदनशील समाजोन्मुखता एवं सामाजिक प्रतिबद्धता केलिए मशहूर हैं। प्रगतिशील विचारधारा, युग चेतना, मानवतावादी विचार एवं यथार्थवादिता की आधारशिला पर रचित साहनीजी की कृतियों में समाज के शोषितों , पीडितों जैसे सर्वहारा वर्ग की आकुलताओ को वाणी मिली है। साहनीजी की सन् 1981 में प्रकाशित एक महत्वपूर्ण नाट्य रचना है 'कबिरा खडा बाज़ार में'।

भक्तिकाल की निर्गुण भक्तिधारा की ज्ञानाश्रयी शाखा के संत, समाज सुधारक, हिन्दू-मुस्लिम एकता के विधायक, रहस्यवादी कवि एवं मानवतावादी कबीरदास के जीवनकाल में उपस्थित भ्रष्ट सामाजिक, धार्मिक एवं राजनीतिक स्थितिगतियों का चित्रण करके उसके विरुद्ध निर्भयतापूर्वक संघर्ष करनेवाले कबीर के सत्यान्वेषी एवं प्रखर व्यक्तित्व का अत्यंत प्रामाणिक पुनःसृजन नाटक में किया गया है। इतिहास के फलक पर आलेखित इस यथार्थवादी एवं जीवनीपरक जनवादी नाटक में कबीर के विलक्षण व्यक्तित्व के चित्रण द्वारा नाटककार ने वर्तमान समाज में व्याप्त सभी प्रकार की पाखण्डताओं के विरुद्ध विद्रोह करने की आवश्यकता की ओर इशारा किया है।

बीज शब्द - भारत की राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक स्थिति, भक्ति, अलगाव, मानवतावादी संत कबीरदास, हिन्दू-मुस्लिम एकता , दलित पीड़ित व शोषित का ऊर्ध्वगामी स्वर, वर्तमान भारतीय समाज का दस्तावेज।

कबीरदास के दोहों और पदों के विन्यास द्वारा लेखक ने नाटक में कबीर कालीन वातावरण का सुन्दर ढंग से पुनः सृजन किया है। नाटककार की मान्यता है कि "अपने काल के यथार्थ से और उस यथार्थ के विरुद्ध उनके विकट संघर्ष को न दिखाकर कबीर को ब्रह्म में लीन अध्यात्म के गायक संत के रूप में दिखाना कबीर के साथ भी अन्याय करना ही है। नाटक में उनके काल की धर्मांधता,अनाचार,तानाशाही आदि के सामाजिक परिपेक्ष्य में उनके निर्भीकसत्यान्वेषी प्रखर व्यक्तित्व को दिखाने की कोशिश की है।"[1]

कबीर के जीवन और व्यक्तित्व का चित्रण तत्कालीन वातावरण में प्रस्तुत करना ही नाटक का कथानक है। बाज़ार में कपड़े बेचने के लिए जानेवाले कबीर बाज़ार में व्याप्त मंदी के कारण कपड़े बेच नहीं पाता है। वह बाज़ार में खड़े होकर हिन्दू और मुस्लिम दोनों की धार्मिक पाखण्ड़ताओ की कटु आलोचना करते हैं और दोनों की शत्रुता मोल लेते भी हैं। नीरू और नीमा कबीर की इस आदत से परेशान हैं। वे सदा कबीर को अधिकारियों से दूर रहने की चेतावनी देते हैं। लेकिन कबीर उनकी कुछ नहीं सुनता। मुल्ला मौलवियों एवं अंधविश्वासी हिन्दुओं की हंसी उठानेवाले कबीर के कवित्त सुनकर ये दोनों वर्ग जल-भुन जाते हैं।

कबीर काल में धर्म एवं जातिगत भेदभाव अपने ज़ोरो पर था। प्रस्तुत नाटक की सारी घटनाएँ हिन्दुओं की पुण्य नगरी व तीर्थ स्थान काशी में घटती हैं। नाटक में हम देखते हैं कि काशी में बड़े महंत की सवारी आनेवाली है। इसकेलिए रास्ते से निम्न जातिवालों को हटाते हुए सड़क की सफाई हो रही है । इस अवसर पर महन्त के धर्म के बारे में कायस्थ कहता है -" धर्म के तो सब हिन्दू ही हैं साहिब ,पर हिन्दू धर्म के अंदर भी बहुत से धर्म संप्रदाय हैं। :..ब्राह्मणों की ही 108 जातियाँ हैं। एक-एक जाति की फिर उपजात हैं, हज़ारों जाते हैं।"[2]

नाटक में एक जागह महंत की सवारी आती है तो एक साधु बड़ी चाबुक से बीच में पड़े एक चण्डाल लडके को मारता है तो बीच में कबीर उलझ पडता है-

"एक बूंद , एक मलमूतर, एक चाम एक गुदा
एक जाति है सब उत्पन्न , को ब्राह्मण , को सूदा।"

कबीर तो अपने समाज की समस्त पाखण्ड़ताओं से ऊपर उठकर सत्य की खोज करता है। अतः वह सदा बेचैन है। एक गुरु पाने की कबीर की अदम्य चाह और गुरु रामानंद के प्रवचन का प्रभाव प्रथम अंक में व्यक्त है। कबीर अपने साथी बशीरा, ठोना, पीपा आदि से मिलकर सत्संग का इंतज़ाम करते हैं। तभी कबीर के कवित्त गाने के कारण अंधे भिखारी की माँ की हत्या होने की सूचना कोई देता है। नाटक में कायस्थ और कोतवाल के बीच के वार्तालाप द्वारा उस समय की कलुषित जाति व्यवस्था का चित्र मिलता है। साथ ही साथ धार्मिक लोगों के आड़म्बरपूर्ण जीवन की चर्चा भी है।

धार्मिक क्षेत्र को भक्ति की आड़ में दोषपूर्ण बनाने में अपराधी साधु संतों का भी बड़ा हाथ है। लोगों की अज्ञानता का फायदा उठाते हुए धर्म के ठेकेदार आडंबरपूर्ण, विलासी और भोगप्रधान जीवन बिताते हैं। आध्यात्मिकता को स्वार्थपूर्ति का साधन बनानेवाले ऐसे कपट सन्यासियो का जिक्र नाटक के प्रथम अंक के दूसरे दृश्य में मिलता है, जैसे- "आज चांदी की पालकी में आए हैं। कुंभ के मेले में जाते हैं तो सोने की पालकी में जाते हैं। भोजन भी सोने की थाली में करते हैं। पूजा अर्चना भी सोने के पात्रों से होती है। मठ में एक सौ पन्द्रह हाथी हैं।"[3]

नाटक में धर्म और भक्ति के क्षेत्रों की मलिनता का जिक्र भी है। सत्ता या क्षणिक उन्नति के लिए उनमें भी खींचातानी है। साधुओं की हिंसक और भयानक मनोवृत्ति का परिचय भी नाटक में मिलता है। दो मठों के बीच के आपसी वैर और प्रतिशोध लेने खड्ग लिए खड़े साधु-सन्त जो कि सन्यासी भी हैं और शूरवीर भी, उनका वर्णन भी इसमें है। आध्यात्मिकता के कपड़े पहनकर मौज मस्ती में रहनेवाले ऐसे सन्यासियो की टिप्पणी नाटक में इसप्रकार आयी है कि शोभायात्रा पर जितने साधु निकलते हैं सभी भाँग धतूरा पीकर निकलते हैं। गुण्ड़ों जैसे बात करनेवाले और मारकाट में समर्थ साधु-सन्तों की क्रूरताओ पर टिप्पणी करते हुए कबीर कहते हैं कि इनके कारण लोगों का जीवन नरक बन गया है। कबीर के शब्दों में कहें तो "महन्तों के पास गोला बास्द है और मस्जिदवालों के पास तलवरें हैं, हाथी-घोड़े हैं, भाले-नेजे हैं। मेरे पास तो मेरा यह इकतारा है साहिब!"[4]

एक बार कबीर एक ज्ञानी से बहस करते हैं। कबीर का प्रश्न गृहस्थ, साधु, हिन्दू, तुर्क सभी को आसानी से गम्य एक तपस्या मार्ग बताने को था। ज्ञानी ने वेदपाठ का मार्ग सुझाया। कबीर का तर्क था कि यह मार्ग ब्राह्मण और क्षत्रिय केलिए ही प्राप्य था। इसके बाद मस्जिद के ऊपर चढ़कर बांग देनेवाले की हंसी उठाते हुए कबीर कहते हैं कि

"चींटी के पग नेवर बाजे
सो भी साहब सुनता है ।"

कबीर काल के शासक सिकन्दर लोदी थे। वे काशी पधारे हैं तो वहाँ के कोतवाल कन्नीर और साथियों का सत्संग समाप्त कराना चाहते हैं। पर कबीर उसकी बात माननेवाला नहीं था। कबीर को अनेक प्रलोभन और धमकी देने पर भी वह इससे पीछे नहीं हटा। इस पर क्रुद्ध होकर लोदी कबीर को शहर से बाहर कर देता है।

कर्मकाण्डीय भक्ति पद्धति, मानव-मानव को अलग करनेवाली सामाजिक व्यवस्था, सत्ता की क्रूरता साथ ही साथ लोगों में ज़हर की तरह व्याप्त अहंकार, आडंबरप्रियता, स्वार्थपरता, माया-मोह, भ्रम, विषय-तृष्णा आदि के विरुद्ध कबीर सदा लड़ते रहे। हिन्दू और मुसलमान के बीच मंदिर और मस्जिद दीवार बनकर ख़डे रहनेवाले आधुनिक संदर्भ में लोगों की मूर्खता और दिशाहीनता की ओर उन्हें सतर्क करते हुए कबीर का कहना है कि

"मो को कहां ढूंढे बंदे , मैं तो पास में
ना मैं देवाल , ना मैं मस्जिद , ना काबे कैलाश में ।"

सामयिक संदर्भ में 'कबिरा खड़ा बाज़ार में' नाटक की अहमियत इस बात में है कि जाति ,धर्म, राजनीति जैसे मानव के मन को जकड़े हुए सभी पाबंदियों से मुक्त होकर उसे निर्भय, स्वतंत्र चिंतक,सत्यान्वेषी बनने का आह्वान यह देता है। भक्ति और धर्म मानव-मानव में

समता के बजाय अलगाव और उच्च-नीचत्व पैदा करनेवाले आधुनिक संदर्भ में कर्मकांड़ीय भक्ति से बढ़कर मन की शुद्धता,आचरण की पवित्रता, सत्संग, भजन,आत्मपरिष्कार जैसी उदात्त वृत्तियों पर बल देकर कोई भी सभ्य समाज शांतिपूर्वक आगे बढ़ सकता है। कबीरदास सभी अर्थों में भारतीय समाज के पथप्रदर्शक थे। आलोचक श्री निरंजन देव शर्मा का कथन इस संदर्भ में संगत लगता है कि "एक ऐतिहासिक चरित्र के माध्यम से वर्तमान वातावरण की विसंगतियों पर जो चोट की गई है, वह अपने आप में महत्वपूर्ण है।.. आज देश में सांप्रदायिक एवं जातिगत विद्वेष लगातार फैल रहा है। जाति और धर्म के दबाव मानवीयता को पीछे छोड़ रहे हैं। इन सब राजनीतिक, सामाजिक दबावों के बीच मानवीयता के पक्ष में किसी आन्दोलन की बात तो दूर, आवाज़ उठानेवाले की जुबान बंद करने की कोशिश पुज़ोर होती है। ऐसे में भीष्म साहनीजी का यह नाटक समान विचारोंवाले सुधीजनों को जोड़ने और संघर्ष करने की प्रेरणा प्रदान करता है।"[5]

निश्चय ही तेरहवीं शताब्दी के कबीर काल को फलक बनाकर समकालीन भारतीय समाज की विश्रृंखलतिओं पर नाटककार पाठकों को ले जाते हैं। जाति, धर्म, वर्ण, वर्गगत भेदभावों के साथ-साथ सत्ता-धारियों, भक्ति के बागड़ोर संभालनेवालों आदि का यथार्थ चित्र बिल्कुल वर्तमान भारत को प्रस्तुत करता है। कुटीर उद्योगों की दयनीय स्थिति, नारी जीवन की बेबसियाँ, अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता, शिक्षा जगत की असंगतियाँ, धर्म के ठेकेदारों की आडंबरप्रियता, शासन की अमानवीयता व अदूरदर्शिता, भक्ति के नाम पर होनेवाले अनाचार एवं अन्धविश्वास जैसे कई संदर्भों में समकालीन भारतीय परिवेश का जीता-जागता चित्र ही यह नाटक प्रस्तुत करता है।

संदर्भ :

1. कबिरा खड़ा बाज़ार में, भीष्म साहनी, भूमिका, पृष्ठ संख्या.7, प्रकाशक-राजकमल प्रकासन, दिल्ली, प्रथम सं.-1989
2. वही, पृ. सं. 25 3. वही, पृ. सं. 30
4. वही, पृ. सं. 97
5. विचार धारा के परिप्रेक्ष्य में कबिरा (लेख), निरंजन देव शर्मा, (लेखक), विपाशा, पृ. सं. 39-40, अंक 106, सितंबर-अक्तूबर 2003।

♦ सहायक आचार्या
हिन्दी विभाग
सरकारी महिला महाविद्यालय
तिरुवनंतपुरम-14, केरल राज्य।
मो. 9497428960

महामानवों का निर्माण करते हैं आदर्श शिक्षक

♦ **हेमन्त कुमार बिनवाल**

सारांश : यदि शिक्षा के इतिहास में दृष्टि डालें तो किसी भी देश व काल की शिक्षा व्यवस्था बिना शिक्षक या गुरु के सम्पन्न नहीं हुई है। वर्तमान में सूचना एवं संचार क्रान्ति के परिणामस्वरूप उत्पन्न हुई शिक्षा की नई प्रणाली दूरस्थ व मुक्त शिक्षा में यद्यपि शिक्षा प्रदान करने में छात्र व अध्यापक आमने-सामने नहीं होते परन्तु इसमें भी शिक्षा प्रदान करने के लिए शिक्षण-सामग्री का निर्माण तथा छात्रों की शैक्षिक समस्याओं का निराकरण हेतु आयोजित की जानेवाली वार्षिक कार्यशालाओं तथा मासिक कक्षाओं के माध्यम से छात्रों को शिक्षकों के साथ सम्पर्क करने का अवसर प्रदान किया जाता है। क्योंकि यह निश्चित है कि शिक्षा यदि किसी भी माध्यम से प्रदान की जाए, बिना छात्र व शिक्षक की अंतःक्रिया के पूर्ण होना संभव नहीं है। शिक्षक मानव के जीवन में अत्यन्त महत्वपूर्ण भूमिका अदा करता है और एक आदर्श शिक्षक का प्रभाव उसके जीवन में सदैव बना रहता है। एक साधारण मानव को महामानव बनाने की योग्यता केवल एक शिक्षक में ही होती है।

बीज शब्दः शिक्षक, गुरु, महामानव, शिक्षा

एक राष्ट्र अथवा समाज के लिए सबसे महत्वपूर्ण साधन मानव है और शिक्षा ही मानव के चरित्र का निर्माण कर राष्ट्र को बदलने की क्षमता रखती है। वर्तमान में शिक्षा को वैश्विक विषय का रूप माना जाने लगा है। "शिक्षा मानव का शारीरिक, मानसिक, सामाजिक, भावात्मक व चारित्रिक विकास का एक साधन है। शिक्षा का स्वरूप समय की आवश्यकता के अनुरूप निरन्तर परिवर्तित होता रहता है। वर्तमान भौतिकवादी युग में शिक्षा का कार्य मानव के मानसिक, सामाजिक, चारित्रिक विकास के साथ-साथ भौतिक विकास भी करना है, ताकि वह चारित्रिक रूप से सम्पन्न होने के साथ-साथ वर्तमान समाज की आवश्यकता के अनुरूप समाज का भी विकास कर सके।"(1) किसी भी राष्ट्र के विकास के लिए शिक्षा और उसकी गुणवत्ता विशेष महत्व रखती है, क्योंकि शिक्षा ही राष्ट्रीय चिंतन और चरित्र-निर्माण को प्रभावित करती है। शिक्षा का वास्तविक रूप यह है कि वह जीवन-निर्माण करे। इस जीवन-निर्माण की प्रक्रिया में अनेकों घटकों का योगदान रहता है।

"वास्तव में शिक्षक राष्ट्र का निर्माता होता है। जिस देश के शिक्षक ऊँचे आदर्श के पुजारी होंगे, वह देश कभी पिछड़ नहीं सकता। सदा उन्नति के पथ पर अबाध गति से बढ़ता जायेगा, क्योंकि शिक्षक मानवता की नव कोपलों को ज्ञान के जल से सींचकर देशभक्त, विद्वान तथा महान मानव रूपी सुमनों को विकसित कर उनको परोपकार, सहानभूति, प्रेम भावना तथा सहृदयता से सुगन्धित रंग में रंग कर समाज को चार चाँद लगाने के लिए उपस्थित करना एक आदर्श अध्यापक के कठोर परिश्रम का फल है।"(2)

गुरु-शिष्य प्रणाली भारतीय शिक्षा की विश्व को एक देन है। हमारे धर्मशास्त्रों में गुरु को ईश्वर के समान दर्जा देते हुए उसे ब्रह्मा, विष्णु व महेश के समान माना गया है, इससे स्पष्ट है कि गुरु एक व्यक्ति के जीवन में माता-पिता के बाद सर्वाधिक महत्वपूर्ण है। प्राचीन भारत में माता-पिता बालक को शिक्षा प्राप्त करने की उम्र प्राप्त होते ही गुरु के पास शिक्षा प्राप्त करने गुरुकुल में भेज देते थे, जहाँ वह गुरु के सान्निध्य में रहकर अपनी शिक्षा पूर्ण कर एक समग्र मानव के रूप में विकसित होता था तथा ज्ञान के साथ-साथ जीवन जीने की शिक्षा भी प्राप्त करता था।

शिक्षक का अर्थ है कि सिखानेवाला, ज्ञान देनेवाला, धर्मगुरु तथा प्रणेता, मार्गदर्शक आदि। प्राचीन काल में ज्ञानार्थी,योग्य एवं विद्वान गुरु की शरण ग्रहण करता था एवं गुरु के प्रति अत्यन्त पवित्र एवं उदात्त भावयुक्त एवं पूर्णतः विश्वस्त था। भारतीय शिक्षा-प्रणाली विश्व की सबसे प्राचीन तथा महानतम शिक्षा-प्रणाली है। इस प्रणाली का मुख्य आधार भारतीय दार्शनिक विचारधारा है। इसका उद्भव पूर्व वैदिक काल से माना जाता है जब लेखनी व कागज़ का भी आविष्कार नहीं हुआ था। उस समय भारतीय ऋषि-मुनियों के द्वारा श्रवण, मनन और निदिध्यासन विधियों से शिक्षा को एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी में पहुँचाया गया और इस प्रकार से ज्ञान के साथ-साथ संस्कृति का भी संरक्षण किया गया। "प्राचीन भारतीय दर्शन व ज्ञान का आज भी हमारी शिक्षा प्रणाली में प्रभाव स्पष्ट रूप से परिलक्षित होता है।"(3) प्राचीन भारत का इतिहास अनगिनत गुरु-शिष्य गाथाओं से गौरवान्वित है। शिष्य के उत्कर्ष में ही गुरु का उत्कर्ष था। कबीरदास ने साखी में गुरु की शिष्य के व्यक्तित्व निर्माण में भूमिका सुनिश्चित की है। "गुरु कुम्हार सिष कुंभ है, गढ़ि-गढ़ि काढ़ै खोट। अन्तर हाथ सहार दै, बहर-बाहै चोट।।"(4)

शिष्य में नव संस्कारों और साधना के बीज मन्त्र आरोपित कर विलक्षण व्यक्तित्व प्रदान करना गुरु का दायित्व है। भारतीय शिक्षा का उद्भव व विकास गिरि-कानन में हुआ जहाँ पर सुरम्य वातावरण में गुरु(शिक्षक) छात्र (शिष्य) को ज्ञान प्रदान करने का पावन कार्य करते थे। ऋषि-मुनियों व गुरुओं के द्वारा संचालित इन शिक्षण संस्थानों को गुरुकुल कहा जाता था। इन गुरुकुलों में शिष्य गुरु के साथ रहकर ज्ञान की प्राप्ति करते थे। प्राचीन काल में जब विश्व के अधिकांश क्षेत्रों में शिक्षा की ज्योति नहीं जली थी, भारत में गुरुकुल

शिक्षा-पद्धति के रूप में विश्व की प्राचीनतम व समृद्धशाली शिक्षा-व्यवस्था फल-फूल रही थी। एक आदर्श शिक्षक शिष्य को सच्चे पुरुषार्थ व कर्मयोग के मार्ग पर कुशलतापूर्वक चलने की प्रेरणा देता है, भले ही इसके लिए उसे शिष्य को कठोर अनुशासन में रखना होता है, किन्तु उसके अन्तःकरण में शिष्य के प्रति स्नेह की पावन धारा सदैव प्रवाहित रहती है। शिष्यों को आचार या चरित्र की शिक्षा देने के कारण उसे आचार्य कहते हैं। मनु के अनुसार

"उपनीय तु यः शिष्यं वेदध्यापदयेद्विजः।संकल्प सरहस्यं च तमाचार्य प्रचक्षते।।"

अर्थात् 'जो ब्राह्मण विद्वान शिष्य का यज्ञोपवीत संस्कार कर उसे कल्प यज्ञ विद्या तथा रहस्यों (उपनिषदों) के सहित वेदशाखा पढ़ाता था वही आचार्य था। 'गुरु' शब्द 'गु' एवं 'रु' दो वर्णों से मिलकर बना है। 'गु' का अर्थ है 'अन्धकार' एवं 'रु' का अर्थ है 'प्रकाश'। अर्थात् गरु वह है जो अन्धकार से प्रकाश की ओर तथा अज्ञान से ज्ञान की ओर ले जाए। "असतो मा सद्गम। तमसो मा ज्योतिर्गम।"(5)

निष्कर्षः

वर्तमान परिवेश में आज इसकी सर्वाधिक आवश्यकता अनुभव की जा रही है। शिक्षक की भूमिका इतनी ही नहीं कि मात्र विषय की जानकारी छात्र को दे, वरन् उनका दायित्व यह भी बनता है कि वह विषय को भली प्रकार हृदयंगम भी करा दे। शिक्षक ऐसा हो जिसका स्नेह पाकर छात्रों का हृदय गदगद हो जाए। सच में एक आदर्श शिक्षक ही अपने शिष्य में निस्वार्थी, सामाजिक, कर्त्तव्यपरायण, निष्ठावान, चरित्रवान, राष्ट्रप्रेमी, मेहनती, मानवता प्रेमी, पर्यावरण प्रेमी, कर्मठ, योग्य, सीखने के लिए तत्पर, जिज्ञासु, निर्भीकता आदि गुणों को समाविष्ट कर सकता है। ऐसा शिक्षक जो शिष्य को वास्तव में शिक्षित करके एक श्रेष्ठ नागरिक बनाए।

एक बार पुनः गुरु-शिष्य परम्परा जीवित करने की जरूरत है, तभी हमारा देश फिर से अग्रसर होगा। तभी तो कहा है "ध्यानमूलं गुरोर्मूर्तिः पूजामूलं गुरूपद।मन्त्रमूलम् गुरोर्वाक्य मोक्षमूलं गुरुकृपाः।।"(6)

प्राचीन काल में समाज में गुरु का स्थान अत्यधिक पूजनीय होता था, क्योंकि यह माना जाता था कि गुरु ही मोक्ष- प्राप्ति के मार्ग तक ले जा सकता है। 'गुरु' ज्ञान का वाहक तथा उच्च चारित्रिक व नैतिक गुणों से परिपूर्ण होता था, जिस कारण उसे समाज में आदर्श माना जाता था। प्राचीन काल में शिक्षा को मुक्ति का साधन माना जाता था। जब से इस उद्देश्य को गौण किया जाने लगा, विकृति आनी शुरू हो गई, और आज उसका चरम रूप देखने में आ रहा है।

सन्दर्भः

1. बिनवाल, हेमन्त कुमार (2013), चारित्रिक विकास हेतु भौतिक व आध्यात्मिक शिक्षा की उपादेयता, Journal on Divergent Thinking, Vol. 1, No.5, Maharashtra, pp. 14-16
2. भट्ट, अरुण कुमार (2012), युवा निर्माण में गुरू का महत्व, समाज धर्म, वर्ष 8, अंक 12, हिमाचल प्रदेश, पृ. 52.54
3. मनराल, मीना (2013), वर्तमान षैक्षिक परिप्रेक्ष्य में गुरु-शिष्य परम्परा की उपादेयता, गुरुकुल-शोध-भारती, गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार, अंक 19 मार्च 2013, पृष्ठ सं.182-188
4. साखी, कबीरदास
5. बृहदारण्यकोपनिषद् 1.3.28
6. गुरु गीता, प्रणव पंड्या, वेदमाता गायत्री ट्रस्ट हरिद्वार, 2003, श्लोक 76

♦ सहायक प्राध्यापक,
शिक्षाशास्त्र विभाग,
राजकीय महाविद्यालय, लमगडा,
अल्मोड़ा, उत्तराखण्ड-263625

सूचना

NET (हिन्दी) तथा Spoken Hindi की कक्षाओं में प्रवेश पाने को इच्छुक व्यक्ति संपर्क करें -

फोन : 9946253648, 0471 - 2332468

बर्फीले लेह (लद्दाख़) की ओर एक सफर (यात्रावृत्तान्त)

♦डॉ.षीबा शरत.एस

लद्दाख़ भारत का सबसे बड़ा केन्द्र शासित प्रदेश है। यह अब काराकोरम रेंज में सियाचिन ग्लेशियर से लेकर दक्षिण में हिमाचल तक का क्षेत्र है। सन् 2019 अगस्त में भारतीय संसद ने जम्मू और कश्मीर पुनर्गठन अधिनियम पारित किया, जिसके द्वारा 31 अक्तूबर 2019 को लद्दाख एक केन्द्र शासित प्रदेश बन गया। लद्दाख को दो भागों में बाँटा गया है जिसमें लेह जिला और कारगिल जिला शामिल हैं। क्षेत्रफल में यह भारत का सबसे बड़ा केन्द्र शासित प्रदेश है।

लद्दाख के लुभावने प्राकृतिक दृश्य, ऊँचे पर्वत की दर्रे, बर्फ़ से ढ़ँकी ऊँची-ऊँची चोटियाँ आदि हमें उसकी ओर आकर्षित करती हैं। हमने इस बार की यात्रा लद्दाख में जाने के लिए निश्चिय किया। अपने पति और दोनों बच्चों के साथ 13 मई 2022 को दिल्ली पहुँचे। अगले दिन एयर इंडिया उड़ान में सुबह 6.20 को लद्दाख की ओर चले। उड़ान में बैठे हुए हम दूर-दूर तक फैली पर्वत क्षेणियों को देख रहे थे। केवल एक घंटे में हम लेह पर पहुँचे। यह एक छोटा- सा एयरपोर्ट है, सैनिक बेस होने के कारण सुरक्षा ज़्यादा है। चारों ओर भारतीय सैनिक जागरूकता से खड़े हैं। एयरपोर्ट से बाहर निकले तो गहरे भूरे रंग के पर्वत देखे। ठंड़ी हवा हमें झकझोरने लगे। सीधे होटल शंकर रेसिटेन्सी में पहुँचे, आराम किए। Acclimatization (जल वायु अनुकूलन) के कारण बाहर घूमना मना है। शाम को हम लेह बाज़ार घूमने के लिए निकल पड़े। नया स्थान, अपरिचित लोग, बदलते हुए मौसम आदि ने एक सुखद अनुभव प्रदान किया। वहाँ दूकानों की कतार थी। असली हस्तकला के चीज़ें देखीं। सर्दी बरदाश्त करना काफ़ी मुश्किल हो गया। बेटी को उल्टी आई। शाम चार बजे का तापमान 1^0C है। बाहर सर्दो में ख़डे रहना आसान बात नहीं है। हम जल्दी हॉटल पहुँचे।

तारीख 15 मई है। हमें घुमाने के लिए ड्राइवर दोरजे आया। स्थानीय यात्रा के लिए हम उसके साथ निकले। सबसे पहले हम लोग हॉल ओफ फेम (Hall of Fame) में पहुँचे। यहाँ पर दूसरे देशों के साथ हुए भारतीय लड़ाई के संबन्ध में जानकारी मिलती है। इसके बाहर ब्रिटीश निर्मित Anti aircraft gun Hawitzer है। हॉल के अंदर भारत के समुन्नत सैनिक पुरस्कार परमवीरचक्र, महावीरचक्र तथा वीरचक्रा से विभूषित वीर जवानों की तस्वीरें और उनके विवरण भी दिये गये हैं। स्कारटू युद्ध, इंड़ोपाक युद्ध, 1962 के चैना युद्ध, 1965 के इंड़ो-पाक युद्ध की जानकारियाँ यहाँ पर मिलती हैं। पाकिस्तान एवं चैना से पकड़े गए हथियार भी यहाँ प्रदर्शित हैं। वहाँ के सैनिक स्टोर से हम कुछ ऊनी कपड़े खरीदे। वहाँ से हम सीधे 'सिन्धु संस्कार संगम' देखने चले। जाते वक्त मैग्नेटिक हिल पर हम उतरे। इसे ग्रेविटी हिल (चुंबकीय पहाड़ी) भी कहते हैं। इसकी खासियत यह है कि यहाँ पर वाहन गुरुत्वाकर्षण बल की वजह से अपने आप पहाड़ी की तरफ़ बढ़ते हैं। यह पहाड़ी समुद्र के स्तर से लगभग 14000 फीट की ऊँचाई पर और लेह शहर से 30 किलोमीटर दूरी पर स्थित है। चारों ओर ठंड़ी हवा चलती है। थोड़ी यात्रा करने के बाद हम 'सिन्धु-संस्कार संगम' पर पहुँचे। पहाड़ी के पूर्वी हिस्से में सिन्धु नदी बहती है। सुन्दर सिन्धु नदी जो कई गहरी घाटियों और ऊँचे पहाड़ों से होकर बहती है। चारों ओर ऊबड़-खाबड़ पहाड़ हैं। सिन्धु संस्कार संगम में नील रंग का पानी सिन्धु नदी का है तो भूरे रंग का पानी संस्कार नदी का है। इन दोनों नदियों का संगम कश्मीर जाता है। पानी तो स्वच्छन्द बहता रहता है। पहाड़ी घाटियाँ, उन पर उगे वृक्ष, झाड़ियाँ, पौधे, वनस्पतियाँ आदि वातावरण को भव्य बनाती हैं। वहाँ से हम पत्थर साहिब गुरुद्वारा पर निकले। यह गुरु द्वारा समुद्र तल से 12,000 फीट की ऊँचाई पर स्थित

है। सन् 1517 में सिख धर्म के संस्थापक गुरुनानाकदेव ने पहली बार लद्दाख में दौरा किया। पत्थर में अजीब शक्ति है। ऐसा विश्वास है कि आगे के कठिन मार्ग की यात्रा करने से पहले गुरुद्वारा साहिब का दर्शन करना शुभ शकुन है। भारतीय सेना की सख्त पहरेदारी चारों ओर है। प्रार्थना के लिए मेरे बेटे ने अन्दर घुसा। प्रसाद मिला, बाहर आकर हम सबको बाँटा। इस धार्मिक पुण्य स्थल से हम सीधे लेह पालस की ओर चले। लेह पालस को Lachen Palkar Palace भी कहते हैं। इस ऐतिहासिक महल का निर्माण सत्रहवीं शती में राजा सेंगगे नामग्याल ने एक शाही महल के रूप में बनाया है। यह पुराना राजमहल एक पर्वत के ऊपर स्थित है। गाड़ी कहीं दूर पार्क करके हम सब ऊपर की ओर चले। चढ़ाई पर चढ़ते हुए कठिनाई और थकान तो अवश्य होती है परन्तु, आनंद भी बहुत मिलता है। बाहर सिहरन करनेवाली ठंड़ी हवा चलती रहती है। नवें मंजिल का यह भव्य महल लासा के पोट्टाला महल के रूप में है। इसका चौथा मंजिल राजकीय शैली का है जहाँ एक बुद्ध मंदिर भी है। वहाँ भगवान श्रीबुद्ध और अवलोकितेश्वर की प्रतिमाएँ भी हैं। पूजा करने के लिए एक लामा भी है। चारों तरफ़ तिब्बत पेंटिंग हैं। नीचे के रमणीय प्रकृति दृश्य ने एक नई ऊर्जा प्रदान की। वहाँ से हम लोग शांति स्तूप देखने गये। यह एक धार्मिक जगह है जो एक बौद्ध सफेद गुंबदवाला स्तूप है। उस सफेद स्तूप के चारों ओर जापनीस लिपियाँ हैं। इसका निर्माण सन् 1978 में एक जापानी बौद्ध भिक्षु ग्योम्यो नाकामुरा द्वारा हुआ है। इस भव्य भवन के अंदर घुसते ही बौद्ध मंत्र की ध्वनियाँ कानों पर आ पड़ीं। समय लगभग शाम छः बजे था। ऊपर हवा का ठंडापन ज़्यादा हो गया। उस स्तूप के अंदर एक बुद्ध मंदिर और प्रार्थना कक्ष है। वहाँ एक बूढ़े पुजारी हैं, हमने उनका पैर छूकर आर्शीवाद ग्रहण किया। शरीर थिरथिराने लगा। हम सीधे हॉटल चले, खाना खाया, आराम से सो गए।

16 मई है। नुब्रावाली में जाने का दिन। नुब्रा का मतलब फूलों की घाटी है। यह घाटी गुलाबी और पीले जंगली गुलाबों से सजी हुई है। दो दिन के कपड़े पैक करके हॉटल से हम रवाना हुए। बुद्ध पूर्णिमा का दिन है। हमने देखा कि सड़क में लोग भोजन लेकर ख़डे हैं। मुफ़्त दूसरों को बाँटते हैं। हम आगे चलते रहे। पहाड़ी रास्ता है। बड़े-बड़े चट्टानवाले पर्वत चारों ओर घेरे हैं जो बर्फ़ से ओढ़ा हुआ है। कुछ ही क्षण बाद रिमझिम वर्षा आरंभ हो गई और आधे घंटे बाद सारा वातावरण पहले का सा साफ़ हो गया। गाड़ी में बैठकर नीचे देखेंगे तो डर जायेंगे। जल्दी मौसम बदल गया। बाहर बर्फ़ की बारिश है, इसलिए आगे का रास्ता बंद होने के कारण ट्राफिक ब्लोक हो गया। सामने सफेद धुआँ के अलावा कुछ नहीं है। जल्दी सब गाड़ी बर्फ़ से गुम गये। हम डर गए। ड्राइवर दोरजे ने हमारी गाड़ी को जंजीर से बाँधा। धीरे-धीरे गाड़ी को आगे बढ़ाया। अब हम लोग खारदुंग ला पास पर पहुँचे, जिसे आम तौर पर खरजोंग ला कहा जाता है, यह सियाचिन ग्लेशियर में एक बहुत ही महत्वपूर्ण स्ट्रेटेजिक पास है, जो 5,602 मीटर की ऊँचाई पर स्थित है। यह दुनिया का सबसे ऊँचा दर्रा है। ओक्सिजन की कमी के कारण बाहर केवल पाँच मिनट ही हम रह सकते हैं। मेरे बेटे ने बाहर निकलकर फोटो खींचा। इतनी खराब मौसम में भी भारतीय सैनिक सतर्क खड़े हैं। गाड़ी बहुत धीरे-धीरे आगे बढ़ी। बर्फ़ से ओढ़े हुए सफ़ेद चाँदी के पर्वत चमकते हैं। बर्फ़ सड़क पर जमी हुई है। नीचे गहरी घाटी। फिसलाऊ रास्ता। एक पल की लापरवाही से गाड़ी नीचे गिरने की संभावना है। ईश्वर पर भरोसा रखा। रास्ता छोटा है। दोरजे ने बड़ी सावधानी से गाड़ी को आगे चलाया। तब समय 3.30 बजे था। हमें खाना नहीं मिला, हाथ में जो है वही खाया। एक ओर सड़क का निर्माण कार्य ज़ारी है। हम आगे हुंड़र की ओर चले। डिस्किट और हुंड़र नूब्रा घाटी के दो व्यापारिक केन्द्र हैं। नीचे सुन्दर ष्योक नदी बहती है। शाम को छ बजे हम नुब्रावाली में पहुँचे। जाते वक्त रास्ते में दो कूबड़वाले बैक्ट्रियन ऊँट को देखा। उस पर चढ़े। अच्छी सवारी है। ये ऊँट आकृति में छोटे हैं। हमें लेकर कुछ दूर चले। 'नुब्रा' लेह जिले की एक उपजिला है।

यहाँ ष्योक और नुब्रा नामक दो नदियाँ हैं। नुब्रा के लोग तिब्बत वंश के बाल्टी वंशज हैं। यहाँ कठिन सर्दी है। सर्दी के कारण इधर के स्कूल छः महीने खुलते हैं तो छः महीने बंद हैं।। उन दिनों ये लोग बाहर नहीं निकलते। सब सामान पहले ही इकट्ठा करके घर के अंदर ही रहते हैं। पर्यटन यहाँ का मुख्य आय है। नुब्रावाली में सोने के लिए हम ने टेन्ड़ (Tent) बुक किया था। सफ़ेद रंग के टेन्ड़ के अन्दर हम घुसे। इसमें एक अच्छे हॉटल की सुविधाएँ प्राप्त हैं। अच्छा सा फर्नीचर, साज-सज्जा। रात को बत्ती बंद है, फिर सबह छः बजे ही जलायी जाती है। सुहावना अनुभव था। रात में ठंड़ी-ठंड़ी हवा बह रही थी तथा आकाश में बिखरे तारे और चाँद का प्रकाश दृश्य को रमणीय बनाता था। ज़िन्दगी में पहली बार इतने ऊँचे पर्वत के शिखर में चिमचिमाते तारों के उजाले में हमें सोने का मौका मिला। हम लोग आराम से सोए।

मई 17 है। हवा के ठंड़े झोंके व प्रातः कालीन सूर्य की स्वर्णिम किरणें मन को आत्मिक सुख प्रदान कर रही थीं। नाश्ता करके टेन्ड़ से सामान पैक करके हम सीधे पैंगोंग झील की ओर निकले। नूब्रा में भीड़ ज़्यादा है। पैंगोंग जाते वक्त हम चौदहवीं शती के टिसकिट मोनस्ट्री में पहुँचे। यह नूब्रावाली का पुराना मोनस्ट्री है। सेराब सांड़पोई ने तिब्बतीय शैली में इसका निर्माण किया है। यहाँ मैत्रेय बुद्धा की मूर्ति है। हम अंदर घुसे। वहाँ गुरु पद्मसंभव (गुरु रिमपोंचे), गौतम बुद्ध, सोगं ढ़ाप्पा आदि की मूर्तियाँ हैं। हमने भगवान बुद्ध की मूर्ति का परिक्रमण किया। बाहर निकले। सीधे पोंगोंग झील जाने लगे। पूरी सड़क खराब है, केवल चार पाँच गाड़ियाँ ही हैं। दोपहर का खाना खाया। शाम को पौने पाँच को हम झील पर पहुँचे। यह झील पहाड़ों के बीच में बसती है। वहाँ का प्राकृतिक दृश्य मनमोहक है। हमारे रहने का बंदोबस्त झील के सामनेवाले कोटेज पर है। शीशो की ख़िडकी से हम झील देख सकते हैं। इस झील का पानी खारा है। इसकी गहराई 100m है। इसका आधा भाग भारत में, बाकी तिब्बत में है। झील का अधिकार ITBP को है। क्रिस्टल के समान पानी चमकता है। पानी में कोई नहीं उतरते, क्योंकि सर्दो इतनी गहरी है कि कोई अपना मोज उतारकर वहाँ एक पल भी नहीं रह सकते। इसलिए बिना छुए सब लोग झील का आनंद लेते रहे। ठंड़ी हवा हड्डियों को कसता रहता है। हम जल्दी कोटेज के अंदर चले। वहाँ आए सबकी गाड़ियों में ओक्सिजन सिलिन्टर हैं। रात का तापमान 10^0c है। गरम खाना खाकर हम सोए।

मई 18 है। सुबह चार बजे को दिन जैसा उजाला है। बर्फीली पहाड़ी चोटियों पर सूरज की स्वर्णिम किरणों का दृश्य अतिसुन्दर है। हम जल्दी तैयार होकर चांग्ला दर्रे पर पहुँचे। यह दुनिया की दूसरे ऊँचाई (5,360m) की पहाड़ी रास्ता है। वक्र रास्ता है और बाहर बर्फ़ अधिक है। हम षेई में स्थित रानचों के स्कूल पहुँचे। होलिवुड के नामी फिल्म 3 इडियेट्स की कथा को आधार बनाकर इस स्कूल का निर्माण हुआ है। इसका अधिकारी इंजनीयर सोनम वाड़चूक है। उन्होंने गरीब बच्चों के शिक्षावश यह स्कूल बनाया है। सिनेमा का शूटिंग यहाँ चलता है। इसके बगल में असली स्कूल है। वहाँ आगंतुकों को मना है। पूरा स्कूल घूमकर वहाँ के बच्चों द्वारा निर्मित कुछ चीज़ें खरीदीं। चलते वक्त षेई महल, षेई मोनस्ट्री देखे। दोपहर दो बजे हमारे पुराने हॉटल शंकर रेसिटेन्सी में लौट आए। दो दिन के ड्राइवर दोरजे को पैसे दिए, धन्यवाद अदा किए उनसे विदा ली। तीन बजे लेह बाज़ार पहुँचे। पशमिना चादर, मिठाइयाँ, मूर्तियाँ, खिलौने सब खरीदे। प्राकृतिक सुखद ठंड़ी हवा का स्नेहिल स्पर्श लेकर हम गलियों में चलते रहे। रात को हॉटल वापस आये। अगले दिन (मई 19) को सुबह 8.45 को दिल्ली का फ्लैट है। वापस जाना ही है। इन छः दिनों की लद्दाख की यात्रा ने हमें बहुत ही सुखद अनुभव प्रदान किया, जिसे हम कभी नहीं भूल सकते।

♦ असोसियेट प्रोफसर
यूनिवर्सिटी कॉलेज,
तिरुवनन्तपुरम, केरल
मो.9447743225

भगवद् गीता एवं आधुनिक जीवन में तनाव प्रबंधन

♦ प्रो.सरोज व्यास, डॉ.श्वेता गुप्ता

सारांश

जीवन की गति के समपार्श्विक ही जीवन ऊर्जा की भी गति होती है। एक तरुण जीवन सर्वाधिक ऊर्जावान माना जाता है। ऊर्जा की गतिशीलता में विवेक अल्पांश स्तर पर होता है। आयु के एक पड़ाव पर पहुँचकर जैसे-जैसे गतिशीलता की मात्रा कम होती है वैसे-वैसे विवेकशीलता की मात्रा में परिवर्तन होता रहता है। प्रत्येक स्तर पर व्यक्ति कर्मों का आकलन प्रारम्भ करता है, लेकिन संतुष्टिपरक समाधान नहीं मिलने पर निरंतर विविध प्रकार के तनावों से जूझता रहता है। 'गीता' एक महाकाव्य का अंश होते हुये भी अपने आप में 18 अध्याय एवं 700 श्लोकों का महाकाव्य है, वर्तमान समय में जिसे हम धर्म समझकर जीवन में महत्वपूर्ण स्थान दे रहे हैं। एक ओर जीवन एक आडंबर में निरंतर रूप से संकुचित होता जा रहा है, दूसरी ओर 'श्रीमद भगवद गीता' में धर्म की बहुत ही सरल एवं विहंगम परिभाषा दी गई है, जिसके अनुसार धर्म तो हमारे नियमित जीवन की चर्या मात्र है। जीवन की सारी शंकाओं को दूर करते हुये सरल शांत एवं आनंदमयी जीवन निर्देशन के ग्रंथ का नाम ही 'गीता' है।

प्रस्तुत शोधपत्र में व्यक्ति के तनाव प्रबंधन में भगवद गीता ज्ञान के योगदान का अध्ययन प्रस्तुत किया गया है, क्योंकि यही एक ग्रंथ है जिसने व्यक्ति विशेष से किसी भी प्रकार की प्रत्याशा किये हुए एक आत्मविश्वास प्रदान किया है। व्यक्ति का सरल जीवन, नियमित सहज कर्म, व्यवहार एवं आचरण ही आनंदमय जीवन की कुंजी है। गीता में ज्ञानयोग, भक्तियोग एवं कर्मयोग सभी की सरल एवं सहज व्याख्या ने मनुष्य को आश्वस्त किया कि जो जहाँ से भी चले जीवन का अंतिम लक्ष्य सभी के लिए समान है। कर्मयोगी को कर्ममुक्त कर ज्ञानी बनाने की क्षमता केवल गीता में ही है। शरीर, मन एवं आत्मा का अद्भुत विग्रह जीवन यापन को सरलबनाकर व्यक्ति को सहज ही तनाव मुक्त करता है ।

बीज शब्द : ज्ञानयोग, भक्तियोग, कर्मयोग, आनंदमय।

'श्रीमद् भगवद गीता' के प्रत्येक श्लोक में ज्ञान का समुद्र समाया हुआ है। मात्र कुछ श्लोकों को ही आत्मसात कर मनुष्य न केवल अपना जीवन अपितु अपने साथियों, सहचरों एवं सबंधियों के जीवन का भी सुखमय बना सकता है। एक साधारण व्यक्ति जीवन के नित्य कर्मो को करते हुए किस प्रकार शांत, सहज एवं आनंदित जीवन यापन कर सकता है, 'श्रीमद् भगवद गीता' एक सम्पूर्ण निर्देशिका है। यह कोई भी व्यक्ति चाहे वह ज्ञानी, अज्ञानी, गृहस्थ, सन्यासी, गुणी, अवगुणयुक्त, धार्मिक अथवा अत्याचारी हो सभी के जीवन के अनुशासन एवं संचालन हेतु ज्ञान से सुसज्जित पवित्र ग्रंथ है।

जीवन की गति के समपार्श्विक ही जीवन ऊर्जा की भी गति होती है। एक तरुण जीवन सर्वाधिक ऊर्जावान माना जाता है एवं ऊर्जा की गतिशीलता में विवेक अल्पांश स्तर पर होता है। आयु के एक पड़ाव पर पहुँचकर जैसे-जैसे गतिशीलता की मात्रा कम होती है वैसे-वैसे विवेकशीलता में परिवर्तन होता है। व्यक्ति प्रत्येक स्तर पर कर्मों का आकलन प्रारम्भ करता है एवं संतुष्टिपरक समाधान नहीं मिलने पर निरंतर विविध प्रकार के तनावों से जूझता रहता है।

गीता एक महाकाव्य का अंश होते हुए भी अपने आप मे 18 अध्याय एवं 700 श्लोकों का महाकाव्य है। वर्तमान समय में जिसे मनुष्य धर्म समझकर जीवन में महत्वपूर्ण स्थान दे रहा है वहाँ तथाकथित धर्म आडंबर में निरंतर संकुचित हो रहा है। भगवद गीता मे धर्म की बहुत ही सरल एवं विहंगम परिभाषा दी गई है, जिसके

अनुसार धर्म तो हमारे नियमित जीवन की चर्या मात्र है। जीवन की सारी शंकाओं को दूर करते हुए सरल शांत एवं आनंदमयी जीवन निर्देशन ग्रंथ का नाम ही 'गीता' है ।

इंद्रिय विषयों का चिंतन करते हुए मनुष्य में आसक्ति उत्पन्न हो जाती है और ऐसी आसक्ति से काम उत्पन्न होता है और फिर काम से क्रोध प्रकट होता है । (13)

इंद्रियों की शक्ति ने मनुष्य को पर्यावरण को अनुभव करने ,जीवंत बनाने, क्रियाशीलता को प्रभावशाली एवं ऊर्जावान बनाने हेतु सृजित किया, किन्तु जैसे ही हम किसी अनुभूति को स्थायी बनाने हेतु उसका स्वामित्व प्राप्त करना चाहते हैं, स्वयं को कस्तूरी मृग बना लेते हैं। सर्वस्व साथ होते हुए भी निरंतर घड़ी की सुइयों के साथ जीवन के अंतिम क्षणों तक सिर्फ भागते रहते हैं। जीवन के प्रत्येक क्षण को सिर्फ जीने की चेष्टा कर, जीवन में तनाव के स्तर को सरलता से न्यूनतम किया जा सकता है ।

क्रोध से मोह उत्पन्न होता है और मोह से स्मरणशक्ति का विभ्रम हो जाता है। स्मरणशक्ति भ्रमित हो जाती है तो बुद्धि नष्ट हो जाती है और बुद्धि नष्ट होने पर मनुष्य भावकूप में पुनः गिर जाता है।(63)

किसी भी संवेग की इच्छा करना सरल है, किन्तु स्वामित्व हेतु सदैव सामर्थ्य का होना आवश्यक होता है। सामर्थ्यविहीन इच्छा सदैव ही क्रोध को उत्पन्न करती है। क्रोध के संवेग मे हमेशा ही वेग होता है।

ऐसी अवस्था मे क्षुब्ध व्यक्ति मोहग्रस्त होता जाता, क्योंकि चाहता तो सब कुछ है, पर मिलता कुछ भी नहीं और ऐसी अवस्था में व्यक्ति का दिग्भ्रमित होना निश्चित होता है। अज्ञानतावश वह जीवन का उद्देश्य क्या है? क्यों इस धरती पर आया है? क्यों भाग रहा है- इनका उत्तर ढुढ्ने में असमर्थ होता है।

भगवान के भक्त सभी प्रकार के पापों से मुक्त हो जाते हैं, क्योकि वे यज्ञ में अर्पित किए गए भोजन को ही खाते हैं, अन्य लोग जो अपने इंद्रिय सुख के लिए भोजन बनाते हैं, निश्चित रूप से पाप को खाते हैं। (65)

शास्त्रों के अनुसार पाप एवं पुण्य को मनसा वाचा कर्मणा' का बृहद क्षेत्र प्रदान कर रखा है, अर्थात् मन, वाणी एवं कर्म तीनों को ही पाप एवं पुण्य की परिधि में संरक्षित किया गया है। उसी प्रकार भोजन का संबंध न केवल हमारे शरीर से होता है, बल्कि हमारे मन, वाणी एवं कर्म तीनों ही भोजन तत्व से संचालित होते हैं। भोजन को सात्विक, तामसिक एवं राजसिक वर्गों में विभाजित किया गया है। सात्विक भोजन जहाँ मन को शांत एवं संयमित बनाता है, तामसिक भोजन मनुष्य को उत्तेजित एवं आक्रामक बनाता है जबकि राजसिक भोजन सुख विलासिता एवं आमोद-प्रमोद का प्रेरक होता है।

हम भोजन को प्रसाद समझकर ग्रहण करते तो हम स्वाद से अधिक तृप्ति की अनुभूति करते हैं। वर्तमान समय मे भोजन के संबंध में अनेक प्रकार की विविधताएँ एवं भ्रांतियाँ प्रचिलित हैं। जनमानस वर्तमान समय में भोजन को पोषण के स्थान पर स्वाद, समय के स्थान पर सुविधा एवं अध्यात्म के स्थान पर समृद्धि के स्तर पर मापता है। भोजन को यदि हम प्रसाद के रूप मे ग्रहण करते हैं तो उससे संतुष्टि, स्वास्थ्य एवं समृद्धि प्राप्त कर एक संयमित जीवन व्यतीत कर सकते हैं।

न तो कर्म से विमुख होकर कोई कर्मफल से छुटकारा पा सकता है और न केवल सन्यास से सिद्धि प्राप्त की जा सकती है। (4)

जीवन में कर्मविहीन होकर कोई भी प्राणी नही रह सकता, क्योंकि कर्म जीवन का परिचायक है। निर्जीव अवस्था में ही व्यक्ति कर्म गति से विमुख रह सकता है। यदि व्यक्ति कर्मों से स्वयं को पृथक रखने हेतु सन्यास ले लेता है तो भी एक सन्यासी जीवन के कुछ कर्म उसे निर्वहन करने ही होते हैं।अतः उस के लिए भी प्रभु ने 'श्रीमद् भगवद गीता में मार्गदर्शन' प्रदान किया।

जो व्यक्ति कर्मफलों को समर्पित करके आसक्तिरहित होकर अपना कर्म करता है, वह पापकर्मों से उसी प्रकार अप्रभावित रहता है, जिस प्रकार कमलपत्र जल से अस्पृश्य रहता है। (4)

(शेष पृ.सं. 42)

वैश्विक संदर्भों में हिन्दी का बाज़ार

♦ डॉ.राम बिनोद रे

प्रस्तावना

विश्व के सर्वाधिक शक्तिशाली राष्ट्र अमेरिका के राष्ट्रपति बराक ओबामा ने एकाधिक अवसरों पर अमरीकियों को हिन्दी सीखने के लिए सचेत करते हुए कहा था कि हिन्दी सीखे बिना भविष्य में काम नहीं चलेगा। भारत उभरती हुई विश्व शक्ति के रूप में पूरे विश्व में है। संस्कृत आधारित हिन्दी के ध्वनिविज्ञान और दूरसंचारी तरंगों के माध्यम से अन्तरिक्ष और अन्य सभ्यताओं से संदेश के आदान-प्रदान की दृष्टि से सर्वाधिक उपयुक्त माना जा रहा है। हिन्दी की सबसे बड़ी विशेषता है कि हिन्दी में जो लिखा जाता है वही हिन्दी में बोला जाता है। भाषा कौशल की दृष्टि से देखा जाए तो हिंदी विश्व की सबसे अधिक समझी जानेवाली भाषा है ।वर्तमान समय में ऑनलाइन तंत्र वस्तुओं की खरीद फ़रोक, रोज़गार, वस्तु सामग्री की उपलब्धता में अपनी महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह कर रहा है।

वैश्वीकरण के दायरे में भारत और अन्य कई देश बाज़ार के रूप में सामने आया है। आज भारत को दुनिया की तेज़ी से उभरती हुई आर्थिक शक्तियों में गिना जाने लगा है। आज़ादी के बाद पूर्वी सोवियत संघ और समाजवादी देशों की मदद से पूंजीवाद का उदय हुआ, जिससे आर्थिक आत्मनिर्भरता का विकास हुआ। परिणामस्वरूप भारत में मध्यवर्ग और धनाढ्य वर्ग का जन्म हुआ। मध्यवर्ग का एक बृहत समुदाय उपभोक्ता वर्ग में परिणत होकर सम्पूर्ण विश्व व बहुराष्ट्रीय कंपनियों को अपनी ओर आकर्षित करने लगा है, जिससे विश्व भारत को एक बृहत आर्थिक शक्ति का भविष्य देखने लगा है। आर्थिक शक्ति के केंद्र में बाज़ार है और भारत एक बड़े बाज़ार के रूप में परिणत हो चुका है। अतः बाज़ार में निवेश और व्यापार के लिए हिन्दी भाषा का सीखा जाना अत्यंत आवश्यक है। तभी निवेशक अपने सामान को जन-जन तक पहुँचा सकता है। यह प्रक्रिया 2012 के बाद खघ (Foreign Direct Investment) के तहत भारत में बहुराष्ट्रीय कंपनियों के आगमन में तेज़ी से बढ़ोत्तरी हुई है। एक बड़ी आबादी को उपभोक्ता बनाने के लिए,आज बहुराष्ट्रीय कंपनियाँ भारत में निवेश के लिए ललायित खड़ी हैं। समय की मांग के अनुरूप Amazon Shopping, Amazon Prime, Amazon India, Amazon Video, Amazon Jobs जैसी Snapdeal, Myantra, Walmart, Target Corporation, Best buy, Wayfair आदि अनेक व्यावसायिक संस्थाएँ ऑनलाइन तंत्रों के माध्यम से कार्य कर रही हैं। परिणामतः अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर काम करनेवाले प्रतिनिधियों को हिन्दी सीखनी पड़ रही है । यदि भारत का आर्थिक रूप से विकास न हुआ होता तो अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर हिन्दी का इतना बहुमुखी विकास न हुआ होता । बहुराष्ट्रीय कंपनियों को अपने माल के प्रचार-प्रसार और खपत के लिए हिन्दी का सहारा लेना पड़ रहा है । इस प्रौद्योगिकी क्रांति को चरम शिखर पर ले जाने का कार्य हिन्दी संस्कृति द्वारा जनसंचार के माध्यम से संभव हो पाया है, जो व्यापार, संस्कृति, साहित्य, समाज, राजनीति, अर्थव्यवस्था के माध्यम से व्यक्ति को व्यक्ति से, प्रदेश को प्रदेश से, देश को देश से जोड़ रही है ।

आज भारत पूरे विश्व में अनेक वस्तुओं का आयात और निर्यात कर रहा है। यह बात अलग है कि निर्यात में कमी और मूल्यों में वृद्धि का प्रभाव बहुत अधिक रहा है । दूसरी तरफ अनेक वैज्ञानिक, इंजीनियर्स और डॉक्टर आदि बड़ी संख्या में भारत से बाहर जा रहे हैं । उनके साथ भारत की संस्कृति और हिन्दी भाषा का निर्यात हो रहा है। आयात और निर्यात दोनों ही प्रक्रिया में हिन्दी का प्रयोग निरंतर बढ़ता जा रहा है।

तकनीकीकरण और हिन्दी का रंग दुनिया भर में फैलते व्यावसायिक क्रांति ने सूचना प्रौद्योगिकी और तकनीकी क्रांति को बढ़ावा दिया और वोकल से ग्लोबल का सपना दिखया। अर्थात् विश्वग्राम के सपने को यथार्थ में परिणत करने का प्रयास किया जाने लगा। इलेक्ट्रॉनिक संचार माध्यम और कंप्यूटर आदि के उपयोग से हिंदी आगे बढ़ने लगी है। भाषा वैज्ञानिकों का अनुमान है कि 21 वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध तक भाषाओँ की संख्या में अप्रत्याशित रूप से कमी आयेगी, अनुमान है कि वे भाषाएँ टिक पायेंगी, जिनका संबंध व्यावसायिक क्षेत्र से होगा तथा जो भाषिक प्रौद्योगिकी की दृष्टि से विकसित हो पायेंगी, जिससे इन्टरनेट और इंट्रानेट पर काम करनेवाले उपभोक्ताओं के लिए प्रयोजन की सामग्री सुलभ करायेगी । हिंदी अब नई तकनीकी के साथ विश्व व्यापी व्यापार का हिस्सा बनने जा रही है । यह रूप 2019 के कोरोना काल की महामारी के समय स्पष्ट परिलक्षित होती है। विभिन्न व्यापारिक संस्थाओं द्वारा प्रकाशित विज्ञापन, जनसूचना आधारित कार्यक्रम, परियोजना, विज्ञप्ति, नियमावली आदि का प्रकाशन और विचलन ई-मेल, ई-कॉमर्स, ई-बुक, इन्टरनेट, एस.एम.एस., और वेब जगत के माध्यम से किया जा रहा है।

सोशल मीडिया के माध्यम से सामाजिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक, और आर्थिक परिवर्तन को साकार रूप प्रदान कर रहा है। इन्टरनेट जैसे वैश्विक माध्यम के कारण हिंदी के अख़बार एवं पत्रिकाएँ दूसरे देशों में भी विविध साइट्स पर उपलब्ध हैं। ई-पेपर और ई-पत्रिकाओं में सबसे अधिक पढ़ी जानेवाली साहित्य रचना ने हिंदी पाठकों का विश्वव्यापी वर्ग तैयार किया है । "अनंत विजय का मानना है, हिन्दी के चंद उत्साही लोग तो इसको सामाजिक बाज़ार के ताने बाने पर बाज़ारवाद का बड़ा हमला मानते थे । सोशल मीडिया को आपसी भड़ास निकालने का मंच माननेवालों की तादाद भी हिन्दी में कम नहीं थी,अब भी कुछ लोग हैं। दरअसल शुरुआत में सोशल मीडिया पर अँग्रेजी का वर्चस्व था। फेसबुक से लेकर ट्वीटर तक। इस बात को लेकर हिन्दी के लोग सशंकित रहते थे। उनको लगता था कि यह माध्यम अँग्रेज़ीवालों के चोंचले हैं। लेकिन हमारे यहाँ कहते हैं ना कि मनुष बली नहीं होता है समय होत बलवान। तो वक्त बदला और सारी स्थितियाँ भी बदलती चली गईं। पिछले एक दशक में तकनीक का फैलाव काफी तेज़ी से हुआ है । हर हाथ को काम मिले न मिले हर हाथ को मोबाइल फोन ज़रूर मिल गया है । घर में काम करनेवाली मेड से लेकर रिक्शा चलानेवाले तक अब मोबाइल पर उपलब्ध है ।"[1]

"हिंदी में लेखन हेतु क्विलपैड, गूगल इण्डिक टूल्स, लिप्यान्तरण आदि की सहायता से किसी भी साईट पर जाकर रोमन लिपि में टाइप कर सकता है और उस समय रोमन देवनागरी वर्ण में परिवर्तित हो जाती है। यूनिकोड के कारण स्थिति बदल गई है । वेबपेज और विन्डोज़ में भी हिंदी और क्षेत्रीय भाषा में काम किया जाने लगा है ।"[2] विन्डोज़ विस्टा और विन्डोज़ 7 में भी भारतीय भाषाओँ के लिए स्वतः समर्थ सक्षम व्यवस्था है। कोश के रूप में हिंदी शब्द तंत्र, शब्दमाला, डिक्शनरी, ई-माह शब्द कोश, वर्धा हिंदी शब्द कोश, हिंदी यूनिकोड पाठ संग्रह आदि मौजूद हैं। इसके आलावा वर्तनी की जाँच (स्पैल चैक) के लिए कुशल हिंदी वर्तनी जाँचक भाषा और भाषा प्रौद्योगिकी सूक्ष्म हिंदी वर्तनी परीक्षक तथा ओपन सोर्स यूनिकोड वर्तनी परीक्षक तथा शोधक हैं । ई-मेल, मोबाइल चैट, सर्च इंजन आदि पर हिंदी उपलब्ध है । वर्त्तमान में हिंदी में लगभग 11 सर्च इंजन हैं जो प्रमुख रूप से कार्य कर रहा है, जिनमें गुरुजी, जस्ट डायल, एपिक, बिलिसर, रीडिफ़, टैब्स,क्यूमार, नीवा, आई. भारत में प्रमुख हैं, जिसमें निर्देश हिंदी में हैं । आज कई एप्स, सॉफ्टवेयर बनाए जा चुके हैं जिनमें आसानी से हिंदी में अनुवाद किया जा सकता है, जैसे- लीला हिंदी प्रबोध, लीला हिंदी प्रवीन, लीला हिंदी प्राज्ञ, मंत्र सॉफ्टवेयर तथा श्रुतलेखन आदि से फटाफट हिंदी में अनुवाद किया जा सकता है । सी डेक ने भारत सरकार के कार्यालयों में राजभाषा प्रयोग के लिए अंग्रेज़ी पाठ

का हिंदी में अनुवाद के लिए मशीनी अनुवाद की व्यवस्था भी कर दी है । आज हिंदी सिखाने के लिए हिंदी गुरुतथा देवनागरी सिखाने के लिए अच्छा सॉफ्टवेयर मौजूद है । अब हिंदी में वेबसाइट बनाना आसान हो गया है । आज वेबदुनिया, जागरण, प्रभा, साक्षी और बी.बी.सी. में हिंदी के दैनिक पाठकों की संख्या 20 लाख से अधिक हो गई है । इस तरह हिन्दी को वैश्विक संदर्भ देने में फिल्मों,पत्रिकाओं,भारत सरकार के उपायों,उपग्रहचैनलों, विज्ञापन एजेन्सियों, बहुराष्ट्रीय निगमों तथा यांत्रिक सुविधाओं का विशेष योगदान है। हिन्दी को वैश्विक रूप देने में सम्पूर्ण विश्व में फैले तीन करोड़ से ज़यादा प्रवासी भारतीयों का विशेष योगदान है, जिसे भुलाया नहीं जा सकता।

हिन्दी का शैक्षिक संसार

आज विश्व के अनेक देशों में हिन्दी बोली और समझी जाती है । सभी देशों में हिन्दी शिक्षण का मुख्य उद्देश्य भारतीय संस्कृति और साहित्य के बारे में जानकारी प्राप्त करना है । "डॉ करुणा शंकर उपाध्याय ने अपनी पुस्तक हिन्दी का विश्व संदर्भ में डॉ जयंती प्रसाद नौटियाल द्वारा दिए गए विवरण के अनुसार आज विश्व के 206 देशों तथा 176 विश्वविद्यालयों एवं हज़ारों विद्यालयों में हिन्दी शिक्षण का कार्य किया जा रहा है ।" [3]चीन के मंदारिन की तुलना में हिन्दी दुगनी गति से प्रगति कर रही है। वैश्विक रूप से हिन्दी के फैलाव के प्रमुख कारण रहे हैं शर्तबंधी प्रथा, भारतीय उच्चायुक्त की स्थापना,अन्य देशों से मधुर संबंध, स्वैच्छिक संस्थानों की स्थापना आदि। भौगोलिक, राजनीतिक, आर्थिक, प्रतिरक्षात्मक कारण भी रहे हैं ।

सन् 1817 में शर्तबंदी प्रथा के अधीन पाँच वर्षों के लिए भारतीय मज़दूरों को ले जाया गया था जिनमें मॉरीशस,फ़िजी, दक्षिण अफ्रीका, ब्रिटिश गयाना,त्रिनिदाद और टोबागो, सूरीनाम, जमैका आदि देश प्रमुख हैं। इनकी आपसी संपर्क भाषा हिन्दी की बोलियाँ और अन्य भारतीय भाषाओं का मिश्रित हिन्दी था।[4] जनसंख्या अधिक होने के कारण हिन्दी को महत्व मिला, जिसमें हिन्दी शब्दों के अलावा उस देश की भाषा के शब्द भी समाहित हैं, जो एक अलग खुशबू,रंग और संस्कार से निर्मित एक नई भाषा बन गई है । खुशबू भारतीय है, पर कलेवर विदेशी है जैसे फ़िजी में फ़िजीहिन्दी या फ़िजिबात, दक्षिण अफ्रीका में दक्षिण अफ्रीकन भोजपुरी या नेटाली हिन्दी, गयाना, त्रिनिटाड में क्रियोली हिन्दी, सूरीनाम में सूरीनामी हिन्दी आदि ।कुछ देश ऐसे हैं जिनके साथ हमारे सदियों से मधुर संबंध रहे हैं, जैसे- नेपाल, भूटान, श्रीलंका, पाकिस्तान,म्यांमार, बर्मा,आदि देशों को भारत की गूढ़ संस्कृति और साहित्य को जानने की उत्सुकता हमेशा रही है।

राजनीतिक,भौगोलिक और आर्थिक प्रतिरक्षात्मक कारणों से अपने सबंधों को बनाये रखने के कारण श्रीलंका में सामाजिक, सांस्कृतिक, और साहित्यक स्तर पर हिन्दी एक जीवंत भाषा के रूप में बनी हुई है। यहाँ तीन विश्वविद्यालयों-कॉलणिय, कोलंबो, और श्रीजयवर्धनपुर- में हिन्दी पढ़ाई जाती है। हिन्दी संस्थान, श्रीलंका में उन स्वैच्छिक संस्थानों में से एक है जहाँ हिन्दी को विश्वव्यापी बनाया जा रहा है।इसके अलावा काटमांडू और पाकिस्तान के कराची, इस्लामाबाद और लाहौर विश्वविद्यालयों से अनेक पत्र-पत्रिकाओं का प्रकाशन हो रहा है।इनमें प्रमाणपत्र, डिप्लोमा पाठ्यक्रमों के साथ-साथ एम.ए का पाठ्यक्रम भी मौजूद है। कहीं-कहीं हिन्दी फारसी रंग में रंगी हुई दिखाई देती है। बांगलादेश के ढाका विश्वविद्यालय में हिन्दी पढ़ाई जाती है। म्यांमार तथा भूटान के स्कूलों अथवा सामाजिक,धार्मिक संस्थानों में हिन्दी शिक्षण कराया जाता है। एशियाई देशों में चीन, जापान, दक्षिण कोरिया, इंडोनेशिया, उज्बेकिस्तान, कजाकिस्तान, तजाकिस्तान, मलेशिया, थायलैंड आदि देशों में हिन्दी अध्ययन-अध्यापन की व्यवस्था भारत सरकार के सांस्कृतिक आदान-प्रदान कार्यक्रम के अंतर्गत की गई है। माननीय मंत्री राजनाथ सिंह अपने साक्षात्कार में कहते हैं "विश्व के कई विश्वविध्यालयों तथा सैकडों छोटे-बड़े केन्द्रों में विश्वविध्यालय स्तर से लेकर शोध स्तर तक हिन्दी के अध्ययन-अध्यापन की व्यवस्था हुई

है। यू ए ई के हम एफ एम सहित अनेक देश हिन्दी कार्यक्रम प्रसारित कर रहे हैं, जिनमें बी बी सी, जर्मनी के डायचे वेले और जापान के एनएचके वल्ड विशेष रूप से उल्लेखनीय है।"[5]

चीन में 1942 को खुनमिड़ में हिन्दी स्कूल ऑफ ओरिएंटल लैंगवेज एवं लिटरचेर में दो वर्षीय पाठ्यक्रम आरंभ हुआ। "इसके अलावा बीजिंग विश्वविद्यालय में हिन्दी के शिक्षण का कार्य हो रहा है। यहाँ के विधार्थियों के विशेष सहयोग के द्वारा रामचरितमानस का चीनी भाषा में अनुवाद तथा शब्दकोश, व्याकरण आदि का निर्माण हुआ। सिंगापुर में उत्तर भारतीय समिति की स्थापना हुई।"[6] इसी श्रृंखला में यहाँ आर्यसमाज मंदिर और लक्ष्मीनारायण मंदिर आज भी हिंदी शिक्षण का कार्य कर रहे हैं। सिंगापूर के पूर्व माध्यमिक कक्षाओं के विद्यालयों को हिंदी भाषा की शिक्षा दी जाती है। यहाँ सरकारी स्कूलों में हिंदी शिक्षण का कार्य किया जा रहा है ।थाईलैंड में शिलपाकोन विश्वविद्यालय में हिंदी शिक्षण के लिए 40 घंटे और 50 घंटे के पाठयक्रम आम आदमियों के लिए भी चलाये जा रहे हैं। इंडोनेशिया में भारतीय संगीत तथा हिन्दी फिल्मों के गानों को पसंद किया जाता है।

सन् 1908 में जापान के टोक्यो में विदेशी भाषा विद्यालय की शुरुआत हुई, जिसमें हिन्दुस्तानी और दक्षिण भारतीय भाषाएँ प्रमुख रहीं; लेकिन 1949 में विदेशी विद्यालय को विश्वविद्यालय बना दिया गया जिसे टोक्यो यूनिवर्सिटी ऑफ़ फॉरेन स्टडीज़ के नाम दिया गया। हिंदी-जापानी शब्दकोश, हिंदी-जापानी और जापानी-हिन्दी शब्दकोश, हिंदी प्रचार अभ्यास पुस्तिका आदि महत्वपूर्ण पुस्तकें हैं। दाईतोबुनका विश्वविद्यालय,ताकुशोकु तथा एशिया विश्वविद्यालय आदि विश्वविध्यालययों में हिंदी शिक्षण का कार्य होता है।

सन् 1921 से एशिया ओसाका यूनिवर्सिटी ऑफ़ फॉरेन स्टडीज में हिंदी शिक्षण का कार्य हो रहा है। बौद्ध धर्म से सम्बंधित धार्मिक ग्रन्थों के प्रभाव स्वरूप हिन्दी का प्रवेश कोरिया में हुआ । बौद्ध धर्म के ग्रंथों और मंदिरों की दीवारों पर संस्कृत के अक्षर मौजूद हैं। वर्त्तमान में 7 केन्द्रों में हिंदी पढ़ाई जाती है।"[7] हंकुक यूनिवर्सिटी ऑफ़ फॉरेन स्टडीज़ में हिंदी विभाग है जहाँ कला निष्णात तक की पढ़ाई होती है। इसके अलावा भारत में पैर पसारे Sumsung, L.G, Hyundai जैसी कंपनियों को हिंदी भाषाई कौशल के आधार पर हिंदी सिखायी जाती है। इंग्लैंड के कैंब्रिज विश्वविद्यालय में लगभग 150 वर्षों से हिन्दी पढ़ाई जाती है, यहाँ मध्यकालीन संत काव्य पर अधिक काम हुआ है। अमेरिका में आजकल हिन्दी जानने का महत्त्व धीरे-धीरे बढ़ रहा है। इसका श्रेय भारतीय मूल की संस्थाओं के अलावा अमरीकी सरकार को है,जिसने अपनी भाषा नीति के अनुरूप हिन्दी को सरकारी स्कूलों के विदेशी भाषा कार्यक्रम में एक विकल्प के रूप में रखने की घोषणा की है।

सन् 1950 से जर्मनी के हुम्बोल्ट विश्वविद्यालय में एशियाई अध्ययन की स्थापना हुई जिसमें भारतीय भाषाओँ का भी अध्ययन-अध्यापन हो रहा है। पोलैंड के वार्सा विश्वविद्यालय,इटली के नेपल्स विश्वविद्यालय तथा वेनिस विश्वविद्यालय इनके अलावा रोम, नेपल्स, तोरिनो, मिवान, वेनिस आदि शहरों में हिंदी का पठन पाठन हो रहा है। फ्रांस में पेरिस विश्वविद्यालय, हंगरी के बडापेस्ट में हिंदी शिक्षण कार्य और वहाँ के लोगो का भारतीय संस्कृति से रुबरु करवाया जा रहा है। दूतावास द्वारा भी हिंदी शिक्षण का कार्य किया जाता है,इसमें हंगरी के बुडापेस्ट में स्थित भारतीय दूतावास का प्रयास सराहनीय है। हिंदी को वैश्विक स्तर पर ख्याति प्रदान करने में भारत के विद्यापीठों की केंद्रीय भूमिका रही है।

अँग्रेजी भाषा सीख रहे विदेशियों के मूल्यांकन के लिए पूरे विश्व में अनेक परीक्षाओं का आयोजन किया जाता है, जैसे- टोफेल (TOEFL), आइलेट्स (ISLETS), टोईका(TO EIC) आदि। अर्थात् पश्चिमी और यूरोपीय देशों में विदेशियों के प्रवेश हेतु भाषाई गुणवत्ता से युक्त कई परीक्षाएँ ली जाती हैं और उत्तीर्ण होने के उपरांत ही प्रवेश की अनुमति दी जाती है । भारत में इस प्रकार का प्रावधान अत्यंत आवश्यक है।

अँग्रेजी भाषा के तर्ज़ पर विदेशी भाषा कौशल के आधार पर हिन्दी का फोरन FLPE जैसे पाठ्यक्रम निर्धारित किया जाना चाहिए। हिन्दी को विदेशी भाषा के रूप में सिखाने के लिए पाठ्यक्रम को तीन हिस्सों में बता जाना चाहिए- बेसिक लर्निंग कोर्से, इंटरमीडिएट लर्निंग कोर्स और एडवांस लर्निंग कोर्स। पाठ्यक्रम में मौखिक और लिखित प्रणाली का होना अत्यंत आवश्यक है, जिससे भाषा की संरचनात्मक व्यवस्था के साथ-साथ व्यावहारिक व्यवस्था का ज्ञान हो सके।

विदेशी भाषा के रूप में हिंदी का शिक्षण किया जाना चाहिए। इसके लिए सरकार द्वारा प्रशिक्षित प्राध्यापकों का चयन कर वर्चुवल सामग्री का संचयन किया जाना चाहिए, जिसे पत्र-पत्रिकाओं और ऑनलाइन माध्यम से प्रकाशित कर प्रार्थियों तक पहुँचाया जा सकता है। हिंदी प्रशिक्षण प्रणाली सरलीकृत होना अत्यंत आवश्यक है । "आज चाहे आप फेसबुक पर की जानेवाली बातों का उदाहरण लें या फिर ट्वीटर पर होनेवाली बातचीत या आज वट्सएप्प को ही लें। उस पर होनेवाले अधिकांश संदेश अँग्रेजी के मुकाबले हिन्दी में ही होते है और सबसे आश्चर्य की बात तो यह है कि पहले एस एम एस और फिर सोशल मीडिया साइट पर हिन्दी भी रोमन लिपि में ही लिखी जाती थी, परंतु अब यह स्थिति है कि हिन्दी पूरी तरह से देवनागरी लिपि में लिखी जाती है। इसे तकनीकी क्रांति कहे या फिर लोगों के मन में हिन्दी के प्रति निरंतर बढ़ता प्रेम जिसने लोगों को अपनी भाषा में संचार करने के प्रति जागरूक बनाया है।"(8) अतः बाज़ारयुक्त मानव की बदलती मनस्थिति को नवीन संदर्भों में व्यंजित करने की भरपूर क्षमता हिन्दी भाषा में है।लेकिन भारत सरकार, संस्कृति मंत्रालय, विदेश मंत्रालय, दूतावासों एवं स्वैच्छिक संस्थानों को अभी और प्रयत्न एवं प्रयास करने होंगे, तभी हिन्दी विश्वजन की भाषा बन सकती है।

संदर्भ सूचीः

1.अनंत विजय, सृजनगाथा, वागर्थ प्रतिपत्ये, 20-10-2015

2. डॉ.आरती सिंह, हिंदी विश्व की और चली,प्रवासी जगत (पत्रिका),केंद्रीय हिंदी संस्थान,आगरा, अक्तूबर 2019, पृष्ठ 56.

3. डॉ करुणा शंकर उपाध्याय, हिन्दी का विश्व संदर्भ,राधा कृष्ण प्रकाशन दूसरा संस्करण 2016 वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ 47

4. डॉ.आरती सिंह, हिंदी विश्व की ओर चली,प्रवासी जगत (पत्रिका),केंद्रीय हिंदी संस्थान,आगरा, अक्तबर 2019, पृष्ठ 57.

5. डॉ. श्रीप्रकाश शुक्लसंपादक, राजभाषा भारती (भारत सरकार, गृह मंत्रालय, राजभाषा विभाग),वर्ष 39, अंक 150, जनवरीमार्च 2017, नई दिल्ली, पृष्ठ3

6. डॉ.आरती सिंह, हिंदी विश्व की ओर चली,प्रवासी जगत (पत्रिका),केंद्रीय हिंदी संस्थान,आगरा, अक्तूबर 2019,पृष्ठ 57.

7. वही, पृष्ठ 55.

8. डॉ.श्रीप्रकाश शुक्ल, संपादक, राजभाषा भारती (भारत सरकार, गृह मंत्रालय, राजभाषा विभाग),वर्ष 39, अंक 150, जनवरी-मार्च 2017, नई दिल्ली, पृष्ठ25

Web link

1. नेटवर्क उत्पादों के क्षेत्र में निर्यात विशेषज्ञता द्वारा रोजगार सृजन और विकास, https://www.indiabudget.gov.in/budget2020-21/economicsurvey/doc/vol1chapter/hechap05_vol1.pdf

2. https://licindia.in/Home?lang=hi-IN

3. https://hi.m.wikibooks.org

♦ सहायक आचार्य,
केरल केंद्रीय विश्वविद्यालय,
कासरगोड,केरल
संपर्क 8129102867

जनजातीय त्रासदी की व्यथा कथा - 'काला पादरी'

♦ डॉ.मनोज एन

सार : आदिवासी जो धरती पुत्र हैं, भारत भूमि के मूल निवासी हैं, उनकी संस्कृति प्रकृति की गोद में विकसित हुई ह। ये नगर की सभ्य जातियों से अलग हैं और इसीलिए शोषण के शिकार भी हैं। वर्तमान समय में हिन्दी साहित्य में जिन विमर्शों की चर्चा बड़े-ज़ोर-शोर से की जा रही है, उनमें एक आदिवासी विमर्श भी है। आदिवासियों की समस्याओं उनके दुख-दर्द तथ उनकी विवशताओं पर बहुत सारे उपन्यास हिन्दी में लिखे गये। इस दिशा में तेजिन्दर सिंह गगन का उपन्यास 'काला पादरी' एक महत्वपूर्ण रचना है जिसमें आदिवासी जनजातियों के रुदन की करुण गाथा स्वरप्राप्त है।

बीज शब्द- जनजाति, व्यथा कथा, हाशिया।

भूमंडलीकरण या वैश्वीकरण के दौर में 'वसुधैव कुटुम्बकम' के नारे तो बड़े ज़ोर से लगाये जाते हैं, किन्तु जब अपने ही घर में अपने ही लोगों को तिरस्कृत कर दिया जाए तो स्थिति कारुणिक हो जाती है। हाशिए में रहने केलिए विवश लोग शोषण, अत्याचार तथा दर्द के अंधकार में तड़प रहे हैं। इनमें आदिवासी जनजाति ऐसा ही एक वर्ग है जिनकी समस्याओं को हमेशा अनदेखा किया जा रहा है। हम सब जानते हैं कि भारत में आदिवासी समाज का मूल रूप से जल, जंगल और ज़मीन से नाता रहा है। असल में आदिवासी का जीवन जंगल में शुरू होता है और उसका अंत भी वहीं होता है। आज़ाद भारत में आज भी आदिवासियों के साथ अन्याय और अत्याचार किया जा रहा है।

आदिवासी जनजाति की स्थिति को देखकर सहानुभूति तथा स्वानुभूति से लिखनेवाले लेखकों ने आादिवासियों के कई मुद्दों को साहित्य में पेश किया है और अपनी रचनाओं के माध्यम से समाज को अवगत कराने का प्रयत्न किया है। उन रचनाकारों में तेजिन्दर सिंह गगन का अपना अलग स्थान है। उन्होंने अपनी रचनाओं में आदिवासियों के प्रति हो रहे शोषण का खुलकर चित्रण किया है। 2002 में रचित उनका उपन्यास 'काला पादरी' में मध्यप्रदेश के आदिवासी लोगों की व्यथा कथा चित्रित है। 'सरगुजा' जिले के आदिवासी जीवन पर केन्द्रित प्रस्तुत उपन्यास वहाँ की राजनीतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, धार्मिक व आर्थिक परिस्थितियों को उजागर करता है।

स्थानान्तरित होकर भोपाल से आम्बिकापूर जानेवाले बैंक अधिकारी आदित्य से उपन्यास की शुरुआत होती है। रेलवे स्टेशन पर उनकी मुलाकात जेम्स खाखा से होती है, जो इस उपन्यास का मुख्य पात्र है। खाखा के माध्यम से उपन्यासकार आदिवासियों के जीनव की सारी परिस्थितियों तक पहुँच पाते हैं। वहाँ की भोली और अनपढ़ आदिवासी जनता का धर्म के ठेकेदारों द्वारा परिस्थितिवश धर्मान्तरित करना, आकाल के कारण भूख से मरनेवाले लोगों के साथ धर्म के आधार पर बर्ताव करना आदि इस उपन्यास की मूल समस्याएँ हैं। व्यवस्था के प्रति विरोध उपन्यास का प्रमुख उद्देश्य है। आदिवासी जनता के कल्याण करने के बजाय उनको अधिकारों से वंचित करने का चित्रण उपन्यास का कथ्य है। जंगल के मूल निवासी होने के नाते जंगल से मिलनेवाली चीज़ों और ज़मीन के वे अधिकारी हैं। लेकिन यह अधिकार उनसे छीन लिया गया है। आदिवासी समाज को जिन परेशानियों का सामना करना पड़ता है, उनका यथार्थ अंकन उपन्यास की खूबी है।

धर्म-परिवर्तन की समस्या उपन्यास की प्रमुख समस्या है। धर्म के ठेकेदार लोग अपने धर्म के विस्तार के लिए आदिवासियों का धर्मान्तरण करता है। चर्च उन्हीं की मदद करता है जो ईसाई धर्म का है। जेम्स

खाखा की माँ इसलिए अपने बच्चों को चर्च के कार्य में भेजती है। "चर्च ने तुम्हारे पिता और दादा को रोटी दी थी। काम दिया था और राजा की बेगार से मुक्ति दिलवायी थी। इसीलिए तुम्हें अपना पूरा जीवन चर्च की सेवा में बिताना है।"[1] इस उपन्यास में धर्म के लोगों के बीच आदिवासी समाज अपने अस्तित्व खो बठता नज़र आता है। एक ओर ईसई मिशनरी है जो इन्हें ईसाई बना रहे हैं और दूसरी ओर हिन्दु संगठन है जो ईसाइयों को हिन्दु बना रहे हैं। इस प्रकार दोनों धर्म अपने-अपने फायदे केलिए आदिवासियों का इस्तेमाल करते हैं और दिन-ब-दिन नयी-नयी समस्याओं का सामना कराते हैं। यहाँ दोनों धर्मों के लोग अपने-अपने धर्म की आड़ में आदिवासियों का शोषण करते हैं।

भूख की समस्या उपन्यास की सबसे बडी समस्या है। घोर अकाल पड़ने के कारण जनता का खाना-पीना बंद हो गया था। एक तो वे पहले से ही गरीब और आदिवासी होने के कारण उनकी स्थिति और भी बदत्तर हो गयी है। उपन्यासकार ने स्वयं कभी भूख का एहसास नहीं किया था। उन्होंने लिखा है कि - "खबर के दोनों चेहरे मेरे सामने थे। साथ-साथ। भूख का क्या कोई आकार होता है? मैं नहीं जानता था। मैं ने भूख को कभी नहीं देखा था।"[2] उपन्यास में सरगुजा के आदिवासियों की दर्दनाक स्थिति का वर्णन किया है जो कठोर हृदयी व्यक्ति का दिल भी हिला देता है। यहाँ एक ओर तो लोग तरह-तरह के स्वादिष्ट भोजन कर रहे हैं और दूसरी ओर बिरई लडका जैसे हैं जो भूख से मर जाने केलिए तैयार हैं। क्योंकि उसका पूरा परिवार भूख से मर चुके हैं। उपन्यास में भुखमरी को दर्शाते हुए बता रहे हैं कि "इस क्षेत्र के आदिवासी पिछले कई दिनों से ज़हरीली बूटियाँ खा रहे हैं और जिले के भीतरी इलाकों में तो कुछ लोग अपनी भूख मिटाने केलिए बिल्लियों और बंदरों का शिकार कर उनका मांस ख रहे हैं।"[3] इस प्रकार भूख तथा भुखमरी का भीषण चित्र आदिवासी जीवन की भयानकता को व्यक्त करता है।

व्यवस्था तंत्र का खोखलापान व्यक्त करने में उपन्यासकार बहुत सक्षम निकला है। सरकारी संस्थाएँ एवं एन.जि.ओ गरीब आदिवासियों केलिए, उनके विकास केलिए विदेशों से हज़ारों करोड़ों का धन आयात करते हैं, लेकिन आदिवासियों तक आते-आते कुछ बचता नहीं है। सरकारी तंत्र इन आदिवासियों को परेशान तो करता ही है, पर साथ में उनका शोषण भी करता है। उनके अशिक्षित होने के कारण बैंक के कार्य में दिक्क्त आती है। एक आदिवासी किसान अपने खेत में कुआँ खुदवाने केलिए धक्के खाता है, और अधिकारियों से लिखवाते हैं कि आपकी बैंक का कोई कर्ज हमारे पास नहीं है। आदिवासी किसान अपने विकास से लिए एक के बाद एक अधिकारी से ठोकर खाता फिरता है। अशिक्षा के कारण आदिवासी लोग अंधविश्वासों में डूबे हुए हैं। समाज के लोग भूत-प्रेत को ज़्यादा मानते हैं। इसलिए कभी किसी के बीमार होने पर या भूख के कारण ढीला हो लोग उसके शरीर पर प्रेतात्मा के वास का आरोप करके उस पर वार करते हैं।

उपन्यासकार ने आदिवासियों की दशा का ऐसा वर्णन किया है कि निम्न वर्ग की गरीबी का प्रत्यक्ष रूप सामने दिखाई देने लगता है। अकाल, भूख, शोषण, निरक्षरता और गरीबी जैसी समस्याओं से जूझकर नारकीय जीवन जीने केलिए विवश ज़िन्दगियों की सच्चाई यहाँ व्यक्त होती है। मध्यप्रदेश के दुर्गम इलाकों में बसे आदिवासियों की दर्दनाक स्थिति को स्वरबद्ध करके उपन्यासकार तेजिन्दर सिंह गगन ने स्वतंत्र भारत में धर्म, राजनीति तथा करुणा के नाम पर होनेवाले घोर अत्याचारों पर कठोर वार किया है।

संदर्भ :

1. काला पादरी उपन्यास, पृ. 47; प्रकाशक-साहित्य भंडार; वर्ष 2016
2. वही पृ. 21
3. वही पृ. 23

◆ सहआचार्य, हिन्दी विभाग
सरकारी कॉलेज, मानंतवाडी।

हिन्दी की नयी कविता में स्वच्छन्दतावादी तत्व-एक विवेचनात्मक अध्ययन

♦ परवीन कुमार

सारांश

'नयी कविता' की दृष्टि आधुनिक बोध से परिपूर्ण है। वह भाव बोध और शिल्प के स्तर पर अन्वेषण में विश्वास रखती है इसलिए वह ज्ञात से अज्ञात की ओर, परिचित से अपरिचित की ओर बढ़ती है। नये कवि की दृष्टि एक विश्वदृष्टि है, व्यापक दृष्टि है, एक अन्वेषी की आँख है। उसकी कोई एक राह नहीं है। वह जहाँ भी होती है उसे चार-चार राहें एक साथ नज़र आती हैं। नयी कविता की दृष्टि परिवेश के प्रति प्रश्नाकुल यथार्थवादी और मूल्यान्वेषी है। वास्तव में नयी कविता एक सर्वथा स्वतंत्र, बौद्धिक, वैज्ञानिक और संवेदनशील मानव की दृष्टि है। नयी कविता की इस बौद्धिक, विवेकशील और प्रयोगशीलता ने उसके कथ्य और शिल्प को भी व्यापक स्तर पर प्रभावित करके उसे नयी दिशाएँ प्रदान की हैं। नयी कविता स्वच्छंदतावादी युग का मुख्य काव्यरूप प्रगीत है। वर्डसवर्थ और शोली ने कुछ अदुभुत प्रगीत लिखे, जो अपनी ज्योतिर्मयता के कारण विश्वसाहित्य की अमूल्य निधि हैं। प्रगीत स्वच्छदतावादी युग की देन है।

मूल शब्द - नयी कविता, अन्वेषण, भावबोध, स्वच्छंदवादिता, मूल्यान्वेषी, सामाजिकता।

प्रस्तावना

नई कविता नए दृष्टिकोण के साथ साहित्य जगत में एक नवीन भावभूमि की सृष्टि करती दिखाई देती है। इस विचारधारा के अंतर्गत जिसे रूढ़ियों का विरोध करना कहा जाता है वास्तव मे वह प्रक्रिया सुधारवादी विचारधारा के अंतर्गत बेहतर के लिए अन्वेषण करती हुई प्रतीत होती है।[1]

नयी कविता की दिशा और दृष्टि दोनों ही पूर्ववर्ती काव्यधाराओं की अपेक्षा व्यापक है। यह परिवेश के दबाव और तनाव में लिखी गयी कविता है। किसी विचारधारा विशेष के दबाव से नहीं। कथ्य की व्यापकता और दृष्टि की उन्मुक्तता[2] नयी कविता में विशेष है। एक विवेक सम्पन्न बौद्धिक और संवेदनशील दृष्टि इन कवियों को प्राप्त थी। यही कारण है कि इसमें मानव और परिवेश की नितान्त समसामयिक बौद्धिक, संवेदनशील और मूल्योन्मुख व्याख्या मिलती है। नयी कविता के भावबोध में तर्क, बुद्धि, विवेक, आधुनिक बोध और युगीन यथार्थ का योग है। नयी कविता का भावबोध किसी वाद से या संकुचित धारणा से नहीं, परिस्थितियों की जटिलता से उत्पन्न होता है तथा विवेक और बुद्धि के धरातल पर तपकर जीवन की रागात्मकता को व्यक्त करता है।[3]

वास्तव में नयी कविता के जीवन के प्रति साहित्य के प्रति, परिवेश के प्रति एक विशेष और व्यापक दृष्टि है। डॉ.जगदीश गुप्त ने इसे 'ऋषि दृष्टि' कहा है। ऋषि दृष्टि से तात्पर्य उस निर्भीक सत्यानवेषी दृष्टि से है जो सुन्दर, असुन्दर, मधुर, रुचिर, कटु, सरल, जटिल, बहिरन्तर, वैविध्यमय एवं अनेकमुखी जीवन को समग्र रूप में स्वीकार करते हुए हर वास्तविकता को विवेकयुक्त तटस्थ भाव से देखती है। ऐसी दृष्टि एकदेशीय न होकर सार्वभौमिक होती है। किसी नये अर्थ या तथ्य के उपलब्ध होने पर वह उससे अभिभूत तो होती है, पर आच्छन्न नहीं। उसकी सबसे बड़ी विशेषता यह है कि वह बड़ी से बड़ी अनुभूति को प्रगाढ़ आत्मविश्वास के साथ, बिना अपनी अनुभूति को बिखराए या विचलित प्रज्ञ हुए धारण करने की क्षमता रखती है। वह केवल एक दृष्टि ही न होकर तथ्य तक पहुँचने की एक विधा भी है, जिसकी प्राप्ति गहरे आत्ममंथन और अनुभव की परिपक्वता के बाद ही होती है।[4] नयी कविता में स्वच्छंदतावादी काव्य अन्तर्मुखी प्रवृत्तियों की उपज है। यही कारण है कि इस काव्य प्रवृत्ति में व्यक्ति के आन्तरिक भावस्थलों और संवेगों की गवेषणा की जाती रही है। इसी प्रकार के चिंतन से प्रेरित होकर हिंदी

रचनाकारों और आलोचकों ने भी स्वच्छंदतावाद को व्यक्तित्व की स्वच्छंदता से जोड़ा है।

डॉ.रामधारी सिंह दिनकर का यही विचार है कि "स्वच्छंदतावादी प्रवृत्तियों से युक्त रचनाकार अपनी सीमाओं और संकीर्णताओं से बहुत ऊँचे उठ जाता है स्वच्छंदतावादिता के स्पर्श से परम्परावादी कवि भी पहले से कुछ बड़ा हो जाता है और संयमशील महाकवियों में तो स्वच्छंदतावादी प्रवृत्तियाँ ऐसा चमत्कार उत्पन्न करती हैं जैसे कभी-कभी ही देखने में आता है।"[5] कवि सुमित्रानन्दन पंत व्यक्तित्व को सत्य और सौंदर्य को प्रतिभा बना देने को ही सबसे बड़ी उपलब्धि मानते हैं, "सच्चा कवि वह है जो अपने सृजन प्रेम से अपना निर्माण कर सकता है, अपने को जीवन के सत्य कवि के रूप में विख्यात कर सकता है।"[6] प्रख्यात आलोचक डॉ.नगेन्द्र कवि भी व्यक्तित्व की रचना में उपस्थिति महत्त्वपूर्ण मानते हैं, "अपने को पूर्णता के साथ अभिव्यक्त करना, चाहे वह कर्म द्वारा हो अथवा वाणी द्वारा या किसी भी अन्य उपकरण के द्वारा ही व्यक्तित्व की सबसे बड़ी सफलता है।"[7]

स्वच्छंदतावादी काव्यधारा में मनोवेगों के आधिक्य को डॉ.हज़ारीप्रसाद द्विवेदी द्वारा कहीं अधिक स्पष्ट अर्थसंकेत दिया गया है, "स्वच्छंदतावादी साहित्य की वास्तविक उत्सभूमि वह मानसिक गठन है, जिसमें कल्पना के अवरिल प्रवाह से घन संश्लिष्ट निविड़ आवेग की प्रधानता होती है। इस प्रकार कल्पना का अविरल प्रवाह और निविड़ आवेग, ये दो घनीभूत मानसिक वृत्तियाँ इस व्यक्तित्व प्रधान साहित्यिक रूप की प्रधान जननी है, परंतु यह नहीं समझना चाहिए कि ये दोनों एक दूसरे से अलग रहकर काम करती हैं।"[8] नयी कविता में स्वच्छंदतावादी काव्यधारा में दार्शनिक तथा कलात्मक पक्ष को भी प्रमुख रूप से उभारा गया है। डॉ.श्रीकृष्ण लाल के अनुसार, "स्वच्छंदतावाद केवल एक साहित्यिक आंदोलन नहीं था, वरन् वह कलात्मक एवं दार्शनिक आंदोलन भी था। इसमें विश्व की वेदना, सृष्टि का रहस्य,उदात्त भावना तथा प्रेम और वीरता को अपनाने की तीव्र आकांक्षा, अलभ्य श्रेय से उद्भूत एकान्त वेदना और अनन्त निराशा आदि विशिष्ट दार्शनिक वृत्तियों का प्रदर्शन था।"[9]

स्वच्छंदतावादी काव्यांदोलन को नई विचाराधरा का प्रतिनिधि भी माना गया है। इस संदर्भ में आचार्य किशोरीदास बाजपेयी ने लिखा है "स्वच्छंदतावादी कविता तथा काव्यादर्श नवयुग की समग्र प्रेरणाओं के प्रतिनिधि के रूप में हमारे समक्ष उपस्थित हुए थे। उसमें परम्परागत काव्यधारा तथा काव्योपकरणों के विरुद्ध विद्रोही उपकरणों की प्रधानता थी। इसकी भावना तथा अलंकरण योजना में नवीनता थी। प्रकृति के निसर्गजात आकर्षण के साथ शब्दावली में नवीन संगति थी।"[10] नयी कविता में स्वछंच्दतावाद ने कहीं "सामाजिकता की रूढ़ियों की भी एक सीमा को तोड़ा और इसीलिए कहा गया सामाजिक बंधनों को तोड़ जीवन में स्वच्छंद विचरण करने की लालसा ही स्वच्छंदतावाद है।" [11]विख्यात आलोचक आचार्य रामचन्द्र शुक्ल का मत है कि हिंदी में प्रस्फुटित स्वच्छंदधारा यदि परंपरागत काव्य-संदर्भों से कहीं और गहरे तक जुड़कर चलती तो उसकी स्वच्छंदता सार्थक हो सकती थी। उनके कथनानुसार, "हमारे साहित्य में रीतिकाल की जो रूढ़ियाँ हैं, वे किसी और देश की नहीं। उनका विकास इसी देश के साहित्य के भीतर संस्कृत में हुआ है। संस्कृत काव्य और उसी के अनुकरण पर रचित प्राकृत-उपभ्रंश काव्य भी हमारे ही पुराने काव्य हैं, पर पंड़ितों और विद्वानों द्वारा रूप ग्रहण करते रहने और कुछ बँध जाने के कारण जनसाधरण की भावमयी वाग्धारा से कुछ हटा सा लगता है। पर एक ही देश और एक ही जगत के बीच आविर्भूत होने के कारण दोनों में कोई मौलिक पार्थक्य नहीं। अतः हमारे वर्तमान काव्य-क्षेत्र में यदि अनुभूति की स्वच्छता की धारा प्रकृति पद्धति पर अर्थात् परंपरा से चले जाते हुए मौखिक गीतों के मर्मस्थल से शक्ति चलने पाती तो वह अपनी ही काव्य परंपरा होती, अधिक सजीव और स्वच्छंद की हुई होती।"[12]

नयी कविताः एक परिचय

नयी कविता भारतीय स्वतंत्रता के बाद लिखी गयी उन कविताओं को कहा गया, जिनमें परंपरागत

कविता से आगे नये भावबोधों की अभिव्यक्ति के साथ ही नये मूल्यों और नये शिल्प-विधानों का अन्वेषण किया गया। नयी कविता की प्रवृत्तियों की परीक्षा करने पर उसकी सबसे पहली विशिष्टता जीवन के प्रति उसकी आस्था में दिखायी देती है। आज की क्षणवादी और लघु मानववादी दृष्टि जीवन-मूल्यों के प्रति नकारात्मक नहीं स्वीकारात्मक दृष्टि है। हिन्दी साहित्य में नयी कविता उन कविताओं को कहा गया है जिनमें परंपरागत कविता से आगे नये भावबोधों की अभिव्यक्ति के साथ ही नये मूल्यों और नये विधानों का अन्वेषण किया गया। यह प्रयोगवाद के बाद विकसित हुई हिन्दी कविता की नवीन धारा है। नयी कविता अपनी वस्तु छवि और रूप छवि दोनों में प्रगतिवाद और प्रयोगवाद का विकास होकर भी विशिष्ट है। नयी कविता हिन्दी साहित्य के आधुनिक काल में प्रयोगवाद से कुछ भिन्नताओं के साथ विकसित हिन्दी कविता की नवीन धारा का प्रतिनिधित्व करनेवाली अर्द्धवार्षिक पत्रिका थी। इसे नयी कविता आंदोलन के मुखपत्र की तरह माना जाता है।

नयी कविता आंदोलन का आरंभ इलाहाबाद की साहित्यिक संस्था 'परिमल' से माना जाता है जिसमें कुछ कवियों ने अपनी अहम भूमिका निभायी थी। कथ्य के प्रति नयी कविता में स्वानुभूति का आग्रह है। नया कवि अपने कथ्य को उसी रूप में प्रस्तुत करना चाहता है जिस रूप में उसे वह अनुभूत करता है। नयी कविता वादमुक्ति की कविता है। इससे पहले के कवि प्रायः किसी न किसी वाद का सहारा अवश्य लेते थे, और कवि यदि वाद की परवाह न करे, किन्तु आलोचक तो उसकी रचना में काव्य से पूर्व ही वाद खोजता था वाद से काव्य की परख होती थी। किन्तु नयी कविता की स्थिति भिन्न है। नया कवि किसी भी सिद्धांत, मतवाद, संप्रदाय या दृष्टि की कट्टरता में उलझने को तैयार नहीं। संक्षेप में नयी कविता कोई वाद नहीं है, जो अपने कथ्य और दृष्टि में सीमित हो। कथ्य की व्यापकता और सृष्टि की उन्मुक्तता नयी कविता की सबसे बड़ी विशेषताएँ हैं। नयी कविता में जीवन को पूर्ण स्वीकार करके उसे भोगने की लालसा है।

नयी कविता में स्वच्छंदवादिता

हिंदी साहित्य कोश में कहा गया है कि "साहित्यिक उदारवाद ही स्वच्छंदतावाद है। अर्थात् प्राचीन शिष्ट तथा क्लासिक परिपाटी के विरोध में उठ खड़ी होनेवाली विचारधारा को स्वच्छंदतावाद कहा जाता है।"– काव्य रचना के विभिन्न कालों में, स्वच्छंदतावाद जहाँ कहीं उभरा और उसने आकार लिया, वहाँ पम्परागत काव्य रूपों और मूल्यों से, उसमें अलगाव की प्रवृत्ति दिखाई देना एक स्वाभाविक रचनाधर्मिता कही जा सकती है। पाश्चात्य काव्य-समीक्षा में विषयगत आधार पर परम्परावाद और स्वच्छंदतावाद की प्रवृत्तियों में स्पष्ट अंतर देखा जा सकता है। यदि पाश्चात्य काव्यसमीक्षकों के वैचारिक आधार को देखा जाए तो, स्वच्छंदतावादी काव्य में कल्पना से उद्‌भूत हुए भाव को प्रधानता मिलती है और रचनाकार की आत्मा इस कल्पनाशक्ति को अर्थ देती हुई इसका निर्देश करती है।"[13]

स्वच्छंदतावादी कवियों ने सौंदर्य को व्यापक अर्थसंदर्भों में ग्रहण किया और इसलिए उन्होंने प्रेम को जीवन में सर्वोपरि माना। इन कवियों ने प्रमुख रूप से प्रकृति और नारी में सौंदर्य की व्यापक चेतना को देखा और इस उदार धारणा के कारण ही यह काव्यधारा अधिक जीवन्त बन सकी। स्वच्छंदतावाद शास्त्रीयता के विरुद्ध विकसित वह पाश्चात्य चिंतन है जो साहित्य के क्षेत्र में संवेदन और कल्पना, रूढ़िमुक्त स्वछंदता, भाषा-शैली की सरलता, सौंदर्य प्रियता तथा सजीव भावात्मक प्रकृति-चित्रण को प्रश्रय देता है।[14] डॉ.जगदीश गुप्त स्वछंदतावाद को आंतरिक अनुभूतियों का अविरल प्रवाह मानते हैं। स्वच्छंद काव्यधारा अन्तःचेतना में उमड़नेवाले अनेक भाव स्रोतों का सम्मिलित अविरल उद्यम प्रवाह है, जो अव्यक्त प्रेरणा से अव्यक्त की मिलनोत्कंठा निष्प्रयास कवि कंठ से फूटता है। आचार्य नन्ददुलारे बाजपेयी के अनुसार- "स्वतंत्रता की सरलता और बंधनों का त्याग स्वच्छंदतावाद के मूल में व्याप्त है।"-

प्रस्तुत शोध के उद्देश्य

नयी कविता आधुनिक काल की महत्त्वपूर्ण साहित्यिक उपलब्धि है। दृष्टि की उच्चता और दिशा की

व्यापकता किसी भी काव्यधरा को महत्त्वपूर्ण बनाने का कारक होती है। प्रस्तुत शोधपत्र का उद्देश्य निम्न है:

- नयी कविता का काव्यधारा साहित्य में स्थान।
- नयी कविता की स्वच्छंदवादिता का अध्ययन करना।
- नयी कविता का विश्लेषणात्मक अध्ययन करना।
- नयी कविता में स्वच्छंदवादिता के तत्वों को प्राप्त करना।

प्रस्तुत शोध का अध्ययन क्षेत्र

प्रस्तुत शोध का अध्ययन क्षेत्र नयी कविता में स्वच्छंदतावादी तत्वों का अध्ययन करना है।

प्रस्तावित शोध कार्य का महत्त्व

नयी कविता ने विकासशील जीवन-मूल्यों की स्थापना की है। नयी कविता की यथार्थ और प्रश्नाकुल दृष्टि पर विचार करते हुए डॉ.रामदरश मिश्र ने लिखा है कि नयी कविता की प्रश्नाकुल दृष्टि इन मूल्यों (परम्परागत) को उनकी विसंगतियों के बीच देखती है। नयी कविता की दृष्टि एक सर्वथा स्वतंत्र, बौद्धिक, वैज्ञानिक और संवेदनशील मानव की दृष्टि है। नयी कविता में स्वछंदतावादिता का समावेश स्पष्ट रूप से दिखाई देता है। काव्यधारा में नयी कविता की स्वछंदतावादिता महान कवियों द्वारा स्पष्ट रूप से परिलक्षित होती है।

शोध की परिकल्पनाएँ

- नयी कविता में छंद को केवल घोर अस्वीकृति मिली हो यह बात कल्पनीय नहीं है, बल्कि इस क्षेत्र में विविध प्रयोग भी किए गए हैं। नए कवियों में किसी भी माध्यम या शिल्प के प्रति न तो राग है और न विराग।
- नयी कविता की भाषा किसी एक पद्धति में बँधकर नही रहती। सशक्त अभिव्यक्ति के लिए बोलचाल की भाषा का प्रयोग किया गया है।
- नयी कविता में प्रतीकों की अधिकता है।

प्रयुक्त शोध पद्धति

प्रस्तुत शोधपत्र में शोध-उद्देश्यों की पूर्ति हेतु ग्रंथालय अध्ययन् पद्वति प्रस्तुत शोधपत्र में शोध उद्देश्यों की पूर्ति हेतु ग्रंथालय अध्ययन् पद्धति एवं वर्णनात्मक पद्धति का प्रयोग किया गया है। अर्थात् शोध अध्ययन साहित्यिक विचारों के मूल्यांकन पर केन्द्रित होगा। यह अध्ययन न तो कालक्रम घटनाओं का वर्णन करेगा और न ही संबंधित विचारों के जीवन का लेखा-जोखा, अपितु सम्पूर्ण कार्य चिन्तन एवं विचार केन्द्र को बिन्दु मानकर किया जाएगा। चूँकि साहित्य की उपादेयता एवं इसका साहित्यिक संदर्भ में महत्त्व देखा जाएगा। अतः यह अध्ययन साहित्यिक वर्णनात्मक एवं विवेचनात्मक मान्यता के लिए होगा।

नयी कविता का विवेचनात्मक अध्ययन

काव्य मानवीय संवेदनाओं का गतिशील आख्यान है। वह मानवीय संवेदना की अभिव्यक्ति का कलात्मक, सशक्त और जीवन्त माध्यम है। ये मानवीय संवेदनाएँ और चेतना समसामयिक घटना और परिवेश के घात-प्रतिघात से उत्पन्न और प्रभावित होती है। "मनुष्य की चेतना उसके सामाजिक अस्तित्व से निर्धारित होती है।"[15] व्यक्ति पर देशकाल, परिवेश, घटना और सामाजिक संघर्ष का प्रभाव पड़ना स्वाभाविक है। कवि समाज का सर्वाधिक मुक्त संवेदनशील प्राणी होता है। परिवेश की सकारात्मक और नकारात्मक प्रवृत्तियाँ उसे प्रभावित करती हैं, इसलिए कवि की संवेदना और संवेदना से निर्मित कविता सामाजिकता से उत्पन्न होती है। नयी कविता परिवेशधर्मी कविता है, "वह परिस्थितियों की उपज है।"[16] इसका रचनाकार अपने समय का साक्षात्कार ही नहीं करता, अपितु उससे मुठभेड़ भी करता है। वह जीवन और परिवेश के यथार्थ को उसकी समग्रता में, सूक्ष्म से सूक्ष्म परतों के साथ देखता है।

यहाँ तक कि उसको देखने के लिए परम्परागत सौंदर्यशास्त्र को अपर्याप्त मानकर नवीन सौंदर्यशास्त्र और नवीन सौंदर्य बोध का विकास भी करता है। वह राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय जीवन की राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक परिवेश, वैज्ञानिक, बौद्धिक और साहित्यिक विचारधाराओं से प्रभावित है। उसका परिवेश के साथ गहरा जुड़ाव है। नयी कविता मात्र भावात्मक कथा या कल्पना-निर्मित अपरिचित वस्तु नहीं है, वह अपने परिवर्तनशील परिवेश के साथ गहरा और आत्मीय संबंध रखती है। इसलिए उसमें प्रामाणिकता, ईमानदारी

तथा विश्वसनीयता का समावेश है। आज की जटिल संघर्षपूर्ण, विसंगतिपूर्ण स्थितियों से उनका प्रेरित होना स्वाभाविक है। जो स्वाभाविक है, वह अनिवार्य भी बन जाता है। यही कारण है कि नयी कविता का अध्ययन प्रभावों के परिपार्श्व में भी किया गया है। प्रभाव पड़ना और उसका अभिव्यंजन भी एक सहज प्रक्रिया है। तथ्य यह है कि इस काव्यधारा ने प्रभाव भले ही ग्रहण किये हों, किन्तु उसकी जड़ों में भारती की मिट्टी और यहीं की खाद-पानी अधिक लगे हैं।

निष्कर्ष

इस प्रकार 'नयी कविता' की दिशाओं पर विचार करने पर स्पष्ट होता है कि 'नयी कविता' की दिशा बहुआयामी है। उसने संवेदना और शिल्प के स्तर पर व्यापक धरातलों को स्पर्श किया है। नयी कविता की दिशा इस अर्थ में स्वच्छंदवादी काव्यधाराओं से सर्वथा मिली-जुली और व्यापक है। उसकी दृष्टि में स्वच्छंदवादिता की प्रवृत्ति है तथा दिशा में युग जीवन की व्यापकता।

संदर्भ सूची

1 साहित्य कुंज, डॉ.शोभा श्रीवास्तव का लेख, 15 अक्तूबर 2020, नई कविता का आत्मसंघर्ष मुक्तिबोध।
2 मनोज भारती का लेख, नयी कविता की प्रवृत्तियाँ, लेख 21 अगस्त,2012 ।
3 डॉ.सियाराम मीणा का लेख-नयी कविता का वैशिष्टः आधुनिक हिन्दी कविता से पार्थक्य
के संदर्भ में एक अध्ययन, दिसंबर.,2020।
4 नई कविता- 4, जगदीश गुप्त, पृ.17
5 ज्योत्सना,सुमित्रानन्दन पंत,पृ.सं.92
6 वही
7 विचार और विवेचन, डॉ.नगेन्द्र,पृ.सं.54
8 स्वच्छंदतावादी साहित्य शास्त्र,भूमिका,डॉ.देवराज उपाध्याय,पृ.सं.2
9 आधुनिक हिन्दी साहित्य का इतिहास, डॉ.श्रीकृष्णलाल, पृ.सं.37
10 राष्ट्रीय साहित्य तथा अन्य निबंध,डॉ.किशोरी दास बाजपेयी,पृ.सं.101
11 हिन्दी का समसामायिक साहित्य, डॉ.विश्वनाथ प्रसाद मिश्र,पृ.सं.54
12 हिन्दी साहित्य का इतिहास,आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, पृ.सं.410
13 स्वच्छंदतावाद साहित्य शास्त्रा, डॉ.देवराज,पृ.सं.109
14 ज्योत्सना, सुमित्रानंदन पंत सं.92
15 सलैक्टेड वर्सः कार्लमार्क्स पृ.399
16 नयी कविताः नये कवि डॉ.विश्म्भर मानय,पृ.12

◆ शोधार्थी
हिन्दी विभाग
देशभगत विश्वविद्यालय, मंडी
गोविन्दगढ़, पंजाब।

(पृ.सं.12 के आगे)

संदर्भ सूची

1.सिंह, कुमार सुरेश, बिरसा मुण्डा और उनका आन्दोलन (2009), वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ, (टपै).
2.गुप्ता, रमणिका, आदिवासी साहित्य यात्रा (2008), राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली, पृष्ठ, 37.
3.सिंह, राकेश कुमार सिंह, हुल पहाड़िया, (2022) सामयिक बुक्स, दिल्ली, पृष्ठ, 8.
4.वही, पृष्ठ, 83-84. 5.वही, पृष्ठ, 224.
6.वही, पृष्ठ, 246. 7.वही, पृष्ठ, 254.
8.वही, पृष्ठ, 289. 9.वही, पृष्ठ, 318.
10.सिंह, राकेश कुमार सिंह, (2005), जो इतिहास में नहीं है, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ, 128.
11.वही, पृष्ठ, 53-54. 12.वही, पृष्ठ, 133..
13.वही, पृष्ठ, 179. 14.वही, पृष्ठ, 220-21.
15.वही, पृष्ठ, 263.
16.वर्मा, रूपचंद, (2003), भारतीय जनजातियाँ, प्रकाशन विभाग, दिल्ली, पृष्ठ, 46.

◆ एसोसिएट प्रोफ़ेसर, हिन्दी विभाग
पी जी डी ए वी कॉलेज
दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली-65
मोबाइल 9910272879

डॉ.जयप्रकाश कर्दम की कहानियों में वर्ग चेतना

♦ नवमी भद्रन

दलित साहित्य में अपना महत्वपूर्ण योगदान देनेवाले डा.जयप्रकाश कर्दम एक बहुमुखी प्रतिभा के धनी व्यक्ति हैं। अपने साहित्य में दलितों की समस्याओं को प्रस्तुत करके उनके समाधान की तलाश करना उनके साहित्य की मुख्य विशेषता रही है। उन्होंने दलित साहित्य के माध्यम से दलित समस्याओं का निराकरण करने का प्रयास किया है। आपके कहानी संग्रह 'तलाश' का प्रकाशन सन 2004 में हुआ, जिसमें बारह कहानियाँ संग्रहीत हैं। हर कहानी में कहीं न कहीं नई ज़मीन की तलाश है। जयप्रकाश कर्दम की कहानियों के पात्र अलग-अलग स्तर के होते हुए भी अपने-अपने स्थान पर जुल्म और अन्याय के विरुद्ध अपनी आवाज़ उठाते नज़र आते हैं।।

दलित कहानियाँ दंभी समाज को बेनकाब करती हुई खुली चेतावनी देती हैं। आज़ादी के इतने सालों के बाद भी सवर्ण समाज की मानसिकता में कोई परिवर्तन नहीं आया है। 'तलाश' कहानी संग्रह के माध्यम से आपने इसमें एक बदलाव लाने का प्रयास किया है। इस कहानी संग्रह के सभी पात्र अन्याय के विरुद्ध आवाज़ उठानेवाले हैं। अब वे चुपचाप सहन नहीं कर सकते। इन कहानियों के द्वारा समाज-परिवर्तन की आकांक्षा भी देखी जा सकती है। यथार्थ जीवन जीनेवाले इन कहानियों के सभी पात्र आज भी समाज में संघर्षरत हैं।

–जातिभेद, विद्रोह, जागरूकता

जाति भेद के प्रति विद्रोह की भावना

वैदिक काल से लेकर आज तक जातिप्रथा की व्यवस्था चलते आ रही है। आज विभिन्न क्षेत्रों में, याने साहित्यिक, धार्मिक, वैज्ञानिक, तकनीकी आदि क्षेत्रों में बदलाव-प्रगति हो रही है। लेकिन जाति व्यवस्था के अंतर्गत उतनी मात्रा में बदलाव नहीं आया है। आदमी किसी जाति में ही जन्म लेता है, जीवनयापन करता है और जाति के साथ ही मरता है। लेकिन मरने के बाद भी उसकी जाति नहीं मरती।

आजकल दलित वर्ग जागरूक बन गये हैं। सवर्ण जाति के नाम पर शोषण करने पर वे मुँह बन्द कर ख़डे नहीं होते। जयप्रकाश कर्दम की 'तलाश', 'ज़हर' आदि कहानियों में जाति भेद के प्रति आवाज़ उठानेवालों को हम देख सकते हैं। 'तलाश' कहानी में रामवीरसिंह एक अधिकारी है। तबादला होने पर किराये के मकान की तलाश में था। सभी जगह जाति के नाम पर मकान न मिला। गुप्त जी के यहाँ संयोग से मकान मिल गया। अकेले रहते थे, इसलिए खाना बनाने के लिए रामवती नामक एक महिला को काम पर रख लिया। रामवती जाति से चूहड़ी है। गुप्तजी की पत्नी को यह मालूम होता है। वह मानती है कि रामवती के अपने मकान में आने से घर अपवित्र हो जाएगा। वह अपने पति के द्वारा कहलवाती है कि रामवती से खाना मत बनवाओ। रामवीर सिंह द्वारा कारण पूछने पर गुप्त जी ने बताया कि रामवती तो चूहड़ी है। रामवीर ने कहा कि चूहड़ी है तो क्या हुआ? वह भी इंसान है। गुप्त ने कहा कि "इंसान तो सब हैं साहब, पर इंसान-इंसान में भेद होता हैं। सब इंसान बराबर नहीं होते। हज़ारों सालों से समाज में यह भेद बना हुआ है। समाज के बीच समज के अनुसार चलना पड़ता है साहब। समाज जिन बातों को मानता है हमको भी वे बातें माननी पड़ती है। यदि मोहल्ले में यह बात पता चल गयी कि हमारे घर के अंदर चूहड़ी खाना बनाती है तो मुसीबत हो जाएगी साहब।"[1] (तलाश, जयप्रकाश कर्दम - पृ.सं.26)

रामवीरसिंह ने अनेक तर्कों के द्वारा दलीलें कीं, लेकिन गुप्तजी ने न माना। गुप्तजी ने रामवीरसिंह को सुना दिया-"आप रामवती से खाना बनवाना चाहें तो आपको मकान खाली करना पड़ेगा।"[2] (तलाश, पृ.सं.27) रामवीर ने सोचा, गुप्तजी की बात

को मानने का मतलब होगा छुआछूत और जातिवाद के सामने हथियार डाल देना। रामवीरसिंह ने फैसला कर लिया कि वह रामवती से खाना बनवायेगा। गुप्तजी को जवाब दिया "यदि यह बात है तो मैं आपका मकान खाली करने केलिए तैयार हूँ। लेकिन जातिगत भेदभाव के आधार पर मैं रामवती से खाना बनवाना बन्द नहीं करूँगा।"[3](तलाश, पृ.सं.28)इतना कहकर रामवीर सिंह अपने ऑफिस जाने के बदले नये मकान की तलाश में निकल पड़ा।

'तलाश' कहानी के द्वारा सम्पूर्ण समाज की मानसिकता का परिचय दिया जाता है। समाज में वर्ण व्यवस्था अर्थात् जाति व्यवस्था इतनी मज़बूत है कि आज सदियों के बाद भी सवर्ण समाज अपना व्यवहार बदलने के लिए तैयार नहीं है।आज के जाग्रत दलित वर्ग पुरानी मान्यताओं के स्वीकार के साथ जीने को तैयार नहीं है। प्रस्तुत कहानी सवर्ण समाज के अमानवीय व्यवहार को अस्वीकार करने का संदेश देती है। सामाजिक अन्याय को सहन करने की एक सीमा होती है। सदियों तक इसी अन्याय-अत्याचार का सहन किया। अब हवा बदली है। वर्ग चेतना का संचार हुआ है। यहाँ रामवीर सिंह को एक मकान की तलाश में अनेक जगहों पर चलना पड़ता है। मकान मिलने पर उच्च वर्ग के स्वार्थ के कारण वह नष्ट भी हो जाता है। ऐसा होने पर भी रामवती को अपनी नौकरानी के पद से नहीं हटाता है।अपने वर्ग के एक सदस्य के साथ एकजुट होकर रहने की रामवीरसिंह की मानसिकता वर्ग चेतना का तीखा और ज्वलंत उदाहरण ही है।

दलित वर्ग की सबसे बड़ी समस्या किराये का मकान तलाश करना है। लेकिन दलितों के लिए यह कार्य सवर्ण वर्ग के इलाकों में मुश्किल तथा उसके जख्मों को कुरेदनेवाला होता है। इसलिए दलित व्यक्ति से पहले मकान मालिक की तरफ़ से उसकी जाति पूछी जाती है। किसी दलित को उतना हल्का करने का प्रयास किया जाता है। रामवीरसिंह नामक पात्र के माध्यम से जयप्रकाश कर्दम ने इस प्रकार अस्पृश्यता के इसी सवाल को उठाया है। जहाँ दलित पात्र रामवीरसिंह पलायन का रास्ता नही अपनाता बल्कि साहस के साथ अपने सवालों पर अटल रहता है। वही करता है जो ठीक है। इस मामले में कहानी का नायक जाति के बंधनों को तोडने का प्रतिनिधित्व करता है। उन्हें गुप्तजी का मकान खाली करना मंजूर है, लेकिन रामवती से खाना बनवाना नहीं छोड़ता। यही इस कहानी का मुख्य बिंदु है। यहाँ से अस्मिता की लड़ाई आरम्भ होती है। रामवीरसिंह सम्पूर्ण दलितों में वर्ग चेतना को जगाने में सफल बन गया है। पुरानी सोच बदलने के लिए सवर्ण लोग तैयार नहीं हैं। वर्ग चेतना के ज़रिए दलित समाज को अमानवीयता और अन्याय को स्वीकार न करने केलिए भी प्ररित करता है। प्रसिद्ध कहानीकार कमलेश्वर ने इस कहानी के बारे में बिलकुल सही लिखा है कि "कहानी के नायक रामवीरसिंह को किराए के मकान की तलाश नहीं है।उसे ऐसे घर की तलाश है जहाँ अपनापन हो, ऐसे समाज की तलाश है जहाँ जाति का विभेद न हो।"[4](दलित अभिव्यक्ति संवाद और प्रतिवाद, रूपचंद गौतम पृ.सं.131)

शिक्षा के व्यापक प्रसार एवं डॉ.आम्बेडकर की विचारधारा के कारण आज का दलित अपने साथ होनेवाले अत्याचार का मुकाबला करता है, जवाब देता है। वर्ग चेतना के बल पर वह स्वाभिमान के साथ जी रहा है। डॉ.जयप्रकाश कर्दम की 'ज़हर' नामक कहानी इसका उदाहरण है। इसमें समाज के अगुवा व्यक्ति के भेद भाव युक्त नज़रिये को उजागर किया गया है। साथ ही साथ इसमें दलितों की जागृति का परिचय भी होता है। इस कहानी में विश्वम्बर तांगा चलाकर अपना गुज़ारा करता है। एक दिन एक पंडित उसके तांगे में बैठता है। उसी समय एक रैली में जाते दलित लड़कों को पंडित देख लेते हैं। लड़के साफ सुधरे कपडों से सज्ज हैं। पंडित की आँखों को यह बर्दास्त नहीं होता और दलितों के विरुद्ध बकवास करने लगते हैं। अपने मन में दलितों के प्रति जो ज़हर था वह अनायास बाहर निकलने लगा। "इन चमारों के लड़कों को देखो बाबाजी बने फिरे हैं।... सबसे ज़्यादा सोचने की बात तो यह है भैया कि चमारों के लड़के तो पढ़े लिखकर बन जायेंगे

अफसर बाबूजी और हमारे लड़के रह जावेंगे निरे गंवार। कोर्ट कचहरी में भी चमारों के लड़के होवेंगे। वे तहसीलदार, कलक्टर और जज भी बन जावेंगे। हमारे लड़कों को उनके आगे गिड़गिड़ाना पड़ेगा हाथ जोड़ना पड़ेंगा। यह तो बड़ी डूब मरनेवाली बात होवेगी हमारेलिये। हमारी रोटियों पर पलनेवाले हम पर ही हकूमत करेंगें। "[5](तलाश, जयप्रकाश कर्दम, पृ.सं 111)

पंडित अपने स्वभाव के अनुसार बोलता जा रहा था। विश्वम्बर सब सुनता आ रहा था। वह शोषण को सहन करनेवाला नहीं था। तांगा जब जंगल से गुजर रहा था तो विश्वम्बर ने तांगा रोका और पंडित को नीचे उतरने केलिये कहा "इतनी देर से सुन रहा हूँ। तू चमारों के खिलाफ जहर उगल रहा है और गालियाँ दिए जा रहा है। मैं भी चमार हूँ। जब चमारों से इतनी नफ़रत है, तू चमार के तांगे में क्यूँ बैठता है .. चल उतर मेरे तांगे से।"[6](तलाश, पृ.सं 113)

पंडित ने बाद में बहुत विनती की, पर विश्वम्बर ने नहीं माना। उसकी अक्ल को ठिकाने का यही ठीक मौका था। विश्वम्बर अनपढ़ है, लेकिन अपने वर्ग के सदस्यों पर जो शोषण होता है, उसका विरोध करना अब वह सीख गया है। विश्वम्बर सारे चमार वर्ग केलिए एक प्रतिनिधि बन गया है। आनेवाली युवा पीढ़ी के लिए विश्वम्बर मार्ग दर्शक बन गया है। विश्वम्बर ने पंडित से जो बातें की हैं, समूचे सवर्णों पर बाण जैसे आकर पड़ी हैं। विद्रोह के बावजूद भी हमेशा सवर्णों की विजय होती है। लेकिन यहाँ विश्वम्बर ने जो कार्य किया है उससे पता चलता है कि सवर्ण वर्ग आगे दलितों पर प्रहार करने से पहले एक बार सोच लेंगे। वर्ग चेतना का उग्र रूप ही इस कहानी में हम देख सकते हैं। पंडित ने चमार लड़कों को बुरे कहने पर विश्वम्बर जैसे चमार का खून बह उठा है। अपने वर्ग का हित ही उसकेलिए अनिवार्य है। इसलिए पंडित जैसे सवर्ण का मुँह बंद कर विरोध किया है। एक जाति की अपनी निजी विशेषताएँ होती हैं। दलित अब जाग्रत हो रहे हैं। अब वे न तो शाब्दिक हिंसा बर्दाश्त करने को तैयार हैं और न ही शारीरिक।

शिक्षा के क्षेत्र में जागरूकता

किसी भी समाज की प्रगतिशीलता वहाँ की शिक्षा पर निर्भर होती है। सामाजिक प्रक्रिया में शिक्षा का बड़ा महत्वपूर्ण स्थान है। समाज में जिस प्रकार की शिक्षा की व्यवस्था होगी उसी प्रकार के समाज का निर्माण भी होगा। सदियों से दलितों के पिछड़ेपन का कारण उनका अशिक्षित होना है।आज की स्थिति बदल गयी है। आज के दलित वर्ग अपनी आनेवाली पीढ़ी को उचित शिक्षा देकर जागरूक बनाने में सफल बन गये हैं।

तलाश कहानी संग्रह की एक सशक्त कहानी है 'गंवार' । इसमें शिक्षा के कारण आये परिवर्तन एवं स्वाभिमान का बखूबी चित्रण किया गया है। 'गंवार' कहानी के तीन पात्र हैं - प्रभात, रचना और आभा। प्रभात विद्यार्थी जीवन से आम्बेडकर युवा फेडरेशन में सक्रिय रहा है। साहित्यकार भी है। आंदोलन को साहित्य के माध्यम से मज़बूत करने केलिये साहित्य लेखन को स्वीकारा है।रचना भी कॉलेज के समय से आंदोलन की कार्यकर्ता रही है। कार्य करने का उसका अन्दाज़ अलग है। वह आंदोलन में हाथ उठाकर नहीं हाथों से अपने हाथ जोड़कर कार्य करती है। अम्बेडकर युवा फेडरेशन की एक अन्य कार्यकर्ता आभा है। वह सभी गतिविधियों में हिस्सा लेती है, परंतु जीवन में सुख-सुविधा चाहती है। प्रभात उसके प्रति लगाव रखता है। एक दिन वह आभा से अपनी इच्छा को खुलकर कहता है तो आभा उसका इन्कार कर देती है और अपनी इच्छा को ज़ाहिर करती रहती है कि "तुम समझने की कोशिश करो कि तुम एक क्लर्क हो। गाँव में रहते हो। बहुत सारी ज़िम्मेदारियाँ तुम्हारे सिर पर हैं तुम अपनी पत्नी की अच्छे कपड़े, गहने और दूसरी बहुत सी ज़रूरतें पूरी नहीं कर सकते हो। गाँव में जाना वहाँ के लोगों से मिलना अलग बात है। मैं जन्म से दिल्ली में रही हूँ। गाँव की कठिन ज़िन्दगी में नहीं जी सकती हूँ। मैं किसी ऐसे व्यक्ति से शादी करना चाहती हूँ जो कोई बड़ा अफ़सर या बिज़नेस मैन हो और दिल्ली में रहता हो।" [7](तलाश, पृ 133)

समय गुज़रता गया। प्रभात पढ़-लिखकर एक गजेटेड़ बन जाता है जबकि आभा की वर्तमान दशा बड़ी करुण है। उसकी शादी एक सामान्य बिज़नेस मैन के साथ हुई उसकी भी असमय मृत्यु हो गई। बच्चे और गृहस्थी को बचाने आभा अलग-अलग पुरुषों से दोस्ती रखती है। हाल में रमेश नामक एक आदमी के साथ रहती है जो शादीशुदा है। वह शराब पीकर आभा को मारता भी है, फिर भी आभा सब सहन करने विवश है। रचना आभा से प्रभात की मुलकात करवाती है।आभा प्रभात का व्यक्तित्व एवं उसकी वर्तमान स्थिति को देखकर बहुत लज्जित होती है कि जिस व्यक्ति को मैंने गंवार मानकर ठुकराया था, वही आदमी आज शिखर पर है। उसके पास सब कुछ है और अपने पास कुछ भी नहीं। आभा के दिमाग में प्रभात के उन्नत जीवन के विषय में विचारों का तूफान आ जाता है।

प्रस्तुत कहानी में प्रभात के माध्यम से लेखक ने दलित वर्ग में आये परिवर्तन एवं बदलाव की ओर इशारा किया है।आभा प्रभात को गंवार कहकर ठुकराने पर भी प्रभात थक नहीं गया। इसके विपरीत एक नयी एवं व्यवस्थित ज़िन्दगी से उसका सामना करने का फैसला ले लिया। शिक्षा के ज़रिये प्रभात ने एक नयी ज़िन्दगी की शुरुआत की।

नारी वर्ग में आए बदलाव

भारतीय संस्कृति में नारी को श्रद्धा का पात्र माना जाता है।लेकिन आज वह श्रद्धा के स्थान पर भोग्या बन गयी है। नारी के आदर्शोन्मुख चरित्र, जैसे- आदर्श गृहणी, आदर्श माता, आदर्श पत्नी आदि स्वरूप ही हमने देखे हैं। लेकिन आजकल इसके स्थान पर नारी को केवल भोग्य मानने वाले एक समाज को हम देख सकते हैं। दलित नारी की हालत इससे भिन्न नहीं। शिक्षा के प्रचार-प्रसार एवं दलित वर्ग की उन्नति के लिए सक्रिय संस्थाओं के कारण नारी वर्ग ने अपने ऊपर होनेवाले शोषण का मुकाबला करना सीख लिया है। जयप्रकाश कर्दम की कहानियों में दलित नारी के विद्रोही रूप हम देख सकते हैं।

'मूवमेंट' कहानी अपने अलग अंदाज़ के कारण काफी चर्चित है। डॉ.जयप्रकाश कर्दम इस कहानी के द्वारा दलित स्त्री के अरमानों को अभिव्यक्त करते हैं। यहाँ पर यह भी ध्यान देने योग्य है कि दलित की परिभाषा को व्यापक दृष्टिकोण से देखनेवालों ने मात्र समाज के अंतिम छोर के आदमी को ध्यान में नहीं रखा है, परंतु दलित की परिभाषा में स्त्री को भी समाहित किया है। अर्थात् किसी एक समाज या जाति को दलित मानने के साथ- साथ स्त्री भी दलित मानी जाती है। दलित समाज में स्त्री वर्ग में आयी जागरूकता का प्रतिनिधित्व 'मूवमेंट' कहानी करती है। दलित स्त्री भी घर से बाहर निकलकर समाज में काम करना चाहती है।

समाज सेवा करनेवाला अपने घर में परिवार के लिए समय नहीं दे पाता। स्त्रियों की समानता पर समाज में जो बोलते रहते हैं, अपनी पत्नी को कभी भी साथ नहीं ले जाता। यहाँ सुनीता घर की चारों दीवारों से बाहर निकलना चाहती है। सुनीता की इस मानसिकता से सारी दलित महिलाओं को घर से बाहर निकलकर समाज कल्याण के कार्य करने में प्रेरणा मिलती है। सुनीता जब अपने पति से प्रश्न करती है तब पति उससे कहता है कि सामाजिक दायित्व सब नहीं निभा सकते। सुनीता उसे समझाती है कि "अगर समाज सेवा ही करनी थी तो समाज के प्रति दायित्व है तुम्हारा। अपनी बीबी-बच्चों के प्रति कोई ज़िम्मेदारी नहीं है तुम्हारी?यदि यही सब करना था तो शादी क्यों की थी तुमने? हमें ज़हर लाकर दे दो, फिर खूब समाज सेवा करते रहना तुम। मुझे भी मुक्ति मिल जाएगी रोज़ रोज़ की टेंशन से।"[8] (तलाश, पृ. 83)

पत्नी फिर भी घर परिवार की ज़िम्मेदारियों को निभाते हुए सुख के दिन का इंतज़ार करती है, परंतु वह अपने पति एवं समाज से जो सवाल करती है वह आज भी अनुत्तरित हैं "सिर्फ चाहते हो न?पर रखना तो चाहते हो नौकर की तरह इस चार दीवारी के अंदर ही।.. मैं पूछती हूँ क्या यही प्रगतिशीलता है तुम्हारी की बाहर जाकर अन्याय और असमानता के ख़िलाफ़ भाषण झाड़ो और खुद घर में असमानता का व्यवहार करो?

यही मूवमेंट है तुम्हारा?"[9](तलाश, पृ 82)- सुनीता के इन शब्दों से सारे स्त्री वर्ग को अपनी पहचान का ख्याल ज़रूर आ गयी है। निम्न वर्ग की स्त्रियों में जागरूकता की भावना को जगाने के साथ साथ समानता की माँग की भावना भी है।

जयप्रकाश कर्दम की चर्चित कहानी है 'सांग'। इसमें शोषण के विरुद्ध आवाज़ उठानेवाली 'चम्पा' नामक नारी पात्र पाठकों के दिल बहलानेवाली है। सामाजिक असमानता के कारण दलितों को बेवजह अन्याय और अत्याचार सहना पड़ता है। 'सांग' कहानी में शीला चम्पा को सांग देखने बुलाने के लिए आती है। चम्पा ना कहती है। उसका पति भुल्लन बीमार है वह मुखिया से विनती करके छुट्टी ले लेती है। कर्ज लेकर दवाई लेनी पड़ती है। भुल्लन को सांग देखने का शौक था। वह लाठी के सहारे चलता-चलता सांग देखने चला जाता है। मुखिया को इसका पता चलता है। वह उसे घर आकर पीटता है। भुल्लन की पत्नी माफी माँगती है, परंतु मुखिया मानता नहीं। अंत में भुल्लन की मौत होती है। आठ वर्ष के बाद गांव में सांग आया है। चम्पा के मन में चिंगारी जलती है। वह जानबूझकर सांग देखने जाती है। दूसरे दिन मुखिया आता है, चम्पा पर हाथ उठाने लगता है। चम्पा कपड़े में छुपे ग़डा से मुखिया के सिर के दो टुकड़े कर देती है। अन्याय के विरोध में चम्पा प्रतिकार का प्रतीक बन जाती है। गाँवों में मुखिया आज भी निम्न वर्गों का शोषण करना अपना अधिकार समझते हैं। चम्पा का मुखिया पर प्रहार सदियों से दलित वर्गों का शोषण करनेवाले सवर्ण सत्ताधिकारी की मानसिकता पर प्रहार है। अन्याय के विरोध में अपना स्वाभिमान और वर्ग चेतना को बनाये रखने के लिए परंपरागत ताकतों के सिर पर प्रहार अनिवार्य है। यहाँ चम्पा ने अपने वर्ग पर सदियों से होनेवाले शोषण को जड़ से उघाड़ने का प्रयास करके एक नयी क्रांति की रचना की है।

भुल्लन की हालत संपूर्ण दलित युवा वर्ग की हालत को रेखांकित करती है। भुल्लन की मौत होने के बाद उसकी पत्नी चम्पा में एक नयी मानसिकता का जन्म हुआ है। वह भुल्लन को अपना पति ही नहीं, बल्कि अपने वर्ग के एक सदस्य मानती हुई सम्पूर्ण वर्ग के हित केलिए विप्लव मचाती है। जब कोई वर्ग में एकजुटता या जागरूकता की कमी आती है तब स्वयं वह वर्ग कमज़ोर बन जाता है। स्वयं के वर्ग का विरोध करने पर जीवन संकुचित हो जाता है। लेकिन यहाँ चम्पा ने अपने वर्ग में एक नई चेतना जगायी है। अपने वर्ग के हित के लिए ही वह गड़ा से मुखिया को टुकडा कर देती है।वर्ग चेतना रूपी जागरूकता ही यहाँ हम देख सकते हैं।

इस प्रकार जयप्रकाश कर्दम ने अपनी कहानियों के द्वारा समाज में समानता का स्वप्न देखा है। आपको विश्वास है कि ज़रूर एक दिन जाति भेद और छुआछूत से मुक्त एक समाज आयेगा और सभी लोग 'मानव' नामक एक जाति में शामिल होकर खुशी के साथ जीवन बितायेंगे।

सहायक ग्रंथ-सूची

तलाश (आधार ग्रंथ) - डॉ जयप्रकाश कर्दम, विक्रम प्रकाशन, नई दिल्ली-2005।

संत काव्य के विकास में वर्ण, जाति और वर्ग की भूमिका - कृष्णकुमार सिंह, पंकज पुस्तक मंदिर, दिल्ली-2000।

मध्यवर्गीय चेतना और हिन्दी उपन्यास, भूपसिंह भूपेन्द्र, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली-1999।

भारतीय समाज, जगवीर सिंह, भारती प्रकाशन, वारणासी-2001।

हिन्दी कथा साहित्य में जन चेतना - डॉ अरुणा लोखंडे, जवाहर पुस्तकालय, मथुरा (उ.प्र.)-2001।

हिन्दी का गद्य साहित्य - रामचन्द्र तिवारी, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2014 संस्करण।

समकालीन कहानी का समाजशास्त्र - देवेन्द्र चौबे, सम्यक् प्रकाशन, नई दिल्ली-2000।

♦ शोध छात्रा,
यूनिवर्सिटी कॉलेज,
तिरुवनंतपुरम।

21वीं सदी के प्रथम दो दशकों के हिन्दी गीतकाव्यों में राजनीतिक जीवन-मूल्य

♦ कल्पना जैन, ∧ डॉ.कृष्णगोपाल मिश्र

प्रस्तावना

गीतकाव्य हिंदी साहित्य की एक महत्वपूर्ण विधा है। गीत, गीतकार की अनुभूतियों का उद्‌गार होते हैं। ये गीतकार के हृदय से उत्पन्न होकर सीधे पाठक के हृदय तक अपना संदेश पहुँचाते हैं। लय, ताल, संगीतात्मकता से सुसज्जित गीत सहज ही हृदय में आत्मसात हो जाता है। राजनीति समाज की शासन व्यवस्था को सुचारू रूप से चलाने के लिए बनाए गए नीति, नियमों से संबंधित है। समाज के आर्थिक, सामाजिक और सार्वजनिक स्तर को ऊँचा उठाने का कार्य राजनीति द्वारा संपन्न होता है, इसलिए यदि राजनीति में उच्च जीवन मूल्यों, जैसे- ईमानदारी, सच्चाई, सहिष्णुता, भाईचारा, देश प्रेम आदि का समावेश होता है तो राष्ट्र विकास की ओर तीव्र गति से अग्रसर होता है। भारत में लोकतंत्र व्यवस्था व्याप्त है। लोकतांत्रिक मूल्यों के अंतर्गत समानता, स्वतंत्रता, न्याय, सहिष्णुता आदि मुख्य रूप से शासन व्यवस्था में लायी जाती हैं, परंतु आज राजनीतिक मूल्यों में ह्रास उत्पन्न होने लगा है। ऐसी परिस्थितियों को समाज में गीतकार देखता है और संवेदित होकर उन्हें गीत में ढालकर प्रस्तुत करता है।

ऋषि 'श्रृंगारी' के गीत पेट भरे भूखे प्रसंग में गीतकार ने सरकारी व्यवस्था को दर्शाते हुए गीत रचा है। सरकार की नीतियाँ हमेशा देश व जनता के हित में होनी चाहिए तथा उनके विकास और गरीबों के उत्थान में सरकार के निर्णय सहायक बनने चाहिए, परंतु सरकार के भ्रष्ट नेता तथा अधिकारी निजी स्वार्थों में लिप्त होकर तथा धनलोलुपता में फँसकर देशहित तथा गरीबों के हितों को पीछे छोड़कर केवल पूँजीपतियों को लाभ पहुँचानेवाली नीतियाँ बनाने में लगे हैं। चाहें फिर गरीबों के घर उजड़ जाएँ और वहाँ बड़े-बड़े मॉल या अन्य शॉपिंग कॉम्पलेक्स क्यों न खुल जाएँ। पूँजीपतियों और धनपतियों को लाभ पहुँचाने के सामने त्रस्त जनता का दुख सत्ता में बैठे अधिकारी देखते ही नहीं हैं। सरकार द्वारा निर्मित पंचवर्षीय योजनाएँ भी गरीबी हटाने में असफल हो रही हैं। सरकार की जनता और देश विरोधी नीतियों के कारण सरकार के पाँच साल का कार्यकाल भी जनता पर बहुत भारी पड़ता है, क्योंकि पाँच साल बाद ही वह वोट द्वारा चुनाव में अपना मत देकर सरकार में परिवर्तन ला पाती है। ऐसी व्यवस्था में लोकतंत्र के मूल्य बहुत प्रभावित होते हैं। समानता, स्वतंत्रता और सबको न्याय जैसे मूल्य अपना अस्तित्व खोते जा रहे हैं। असमानता और अन्याय समाज पर हावी होने लगे हैं। अमीर व्यक्ति ही समाज में सम्मान का अधिकारी रह गया है, धन ही व्यक्ति के उच्च, सद्‌चरित्र का मापदंड बनता जा रहा है, इस कारण लोग अनैतिक कार्य करके भी धन कमाने से पीछे नहीं हट रहे हैं और जो अनैतिक कार्यों पर रोक लगाने के लिए नियुक्त जनप्रतिनिधि नेता हैं वे स्वयं अनैतिक कार्यों में लिप्त होने के कारण इन कार्यों के प्रति मौन साधे रहते हैं, ऐसे में समाज में भ्रष्टाचार, अनाचार व्याप्त होता जा रहा है।

गीत 'पेट भरे भूखे प्रसंग' में इन्हीं राजनीतिक तथ्यों को बड़े ही सुंदर ढंग से रचा गया है। गीत की कुछ पंक्तियाँ प्रस्तुत हैं-

बॉट रही सरकार ऑधरी भर भर रेबड़ियाँ
मॉल वही बन जाते हट जाती हैं झोंपड़ियाँ।
बेघर जन किस्मत का रोना रोने लगते हैं ।
पंचशील जनतंत्र आज होते पंचर देखा
सुविधा के सौ पान मिलें किसको अंतर देखा।।

पाँच बरस का संविधान हम ढोने लगते हैं
मान और सम्मान उसी के चाकर होते हैं।
काम अनैतिक भरे बैंक के लॉकर होते हैं।।
जनप्रतिनिधि बनकर संसद में सोने लगते हैं।[1]

मनोज जैन मधुर ने गीत 'रथ विकास का' में राजनीति में राजनेताओं के दोहरे चरित्र को गीत में दर्शाया है। देश में राजनीतिक चुनाव का समय आते ही राजनेताओं को अपनी जनता का ध्यान आ जाता है और फिर शुरू होता है चुनाव प्रचार। चुनाव प्रचार में नेताओं का दोहरा चरित्र देखने को मिलता है, शासन में जो नेता जनता के दुख-दर्द को देखना और दूर करना तो दूर, सुनना तक नहीं चाहता था, वहअपने को जनता में से ही एक होने का दावा करता है और मित्र, रिश्तेदार बनकर जनता के बीच उनकी परेशानियों के तथ्यों को दूर करने के झूठे दावे जनता से करता है। उन्हें आश्वासन देकर उनका सबसे बड़ा हितैषी होने का दम भरता है। उनका चरित्र तो रावण की तरह अनैतिकता का समर्थक होता है, परंतु राम जैसे सद्चरित्र का मुखौटा लगाकर वह जनता से मिलता है। भ्रष्ट नेता चीते की तरह हिरण रूपी जनता का शोषण कर अपने स्वार्थ साधने में लगे रहते हैं और भोली भाली जनता जब उन नेताओं के झूठे वादों से प्रभावित हो, उन्हें अपना जनप्रतिनिधि चुनकर जब सत्तारूढ़ कर देती है तो वह नेता शासक बन जनता का शोषण करने लगता है। गीत 'रथ विकास का' का कुछ अंश दृष्टव्य है

एक मित्र का लगा मुखौटा /हमें लुभाता है
सबकी दुखती रग पर आकर /हाथ लगाता है
रिश्ते अभी बनाकर /अभी भुनानेवाला है
लगे रामसा किन्तु चरित /रावण का जीता है
मृग की छाल ओढ़कर /घर में आता चीता है
माँस नोंचकर जन-जन /का वह खाने वाला है
राजपथों से पगडंडी तक /ये जुड़ जाएगा
तोते की मानिन्द हाथ से /फिर उड़ जाएगा
जनमत नेता जी के /पंख लगानेवाला है [2]

विनय मिश्र के गीत 'बँटने लगे हैं त्रिशूल' में गीतकार ने राजनीति में फैले भ्रष्टाचार और अनाचार की ओर संकेत किया है। राजनीति में धनलोलुपता और सत्ता में बने रहने की उत्कट अभिलाषा के कारण राजनेता धर्म, जाति, संप्रदाय तथा क्षेत्र को मुद्दा बनाकर लोगों में आपस में वैमनस्य उत्पन्न कर चुनाव जीतने का प्रयत्न करते हैं। भोले भाले लोग राजनीति के चक्रव्यूह में फँसकर सांप्रदायिक दंगों का शिकार हो जाते हैं और राजनेता अपने लाभ को प्राप्त कर और बलवान बन जाते हैं, जनता राजनेताओं के हाथ की कपुतली बन उनके अनुरूप कार्य करने लगती है और अपने शोषण का अधिकार अनजाने में ही राजनेताओं को दे देती है। गीतकार चाहता है कि जनता सजग बने और अपने निर्णय स्वयं ले, अनैतिक तत्वों के हाथों की कठपुतली न बनें। गीतकार समाज का ध्यान आकृष्ट कर कहता है कि स्वतंत्रता के इतने अधिक वर्षों के बाद भी शोषण, सांप्रदायिकता, भुखमरी आदि समाज में व्याप्त है, वह चाहता है कि इन मुद्दों का समूल उन्मूलन हो, समाज विकास की ओर बढ़े। गीत 'बँटने लगे हैं 'त्रिशूल' दृष्टव्य है-

उत्तर तो दे नहीं सके
प्रश्नों का भला कुछ करो
आँखों में उड़ती है धूल
बँटने लगे हैं त्रिशूल
सयिाए लोकतंत्र की
नब्ज देख दवा कुछ करो
शोषण के हथियार से
सत्ता के अहंकार से
जूझ रही है भूखी सदी
कैसी है पता कुछ करो
उड़ती खबर में उड़े
आपस में ही हम लड़े
खेलें क्यों औरों के हाथ
अपना ही कहा कुछ करो।[3]

निष्कर्षः

राजनीति में व्याप्त भ्रष्टाचार, अनैतिकता, धनलोलुपता, स्वार्थपरकता आदि तत्वों के कारण उच्च नैतिक जीवनमूल्यों में तेज़ी से गिरावट आ रही है। आवश्यकता है ईमानदारी, समानता, स्वतंत्रता, न्याय, देशप्रेम जैसे उच्च जीवन मूल्यों को राजनीति में व्यवस्थित करके जीवन में उतारने की। हमारे समाज में राजनीतिक व्यवस्था का समाज और उसके लोगों पर अत्यधिक प्रभाव पड़ता है। जनता का प्रतिनिधि उच्च आदर्शोंवाला और सद्चरित्र का होता है तो वह स्वस्थ और सद्चरित्र से युक्त समाज का निर्माण करता है तथा लोग भी उससे प्रभावित हो ईमानदार और देशप्रेमी बन देशहित को सर्वोपरि रखते हैं। राजनेताओं को अपने दलगत और निजी स्वार्थों से ऊपर उठकर राष्ट्रहित में कार्य करने चाहिए, जिससे उच्च जीवनमूल्यों का संरक्षण हो और समाज उन्नति के पथ पर अग्रसर हो सके।

संदर्भ

1)श्रृंगारी ऋषि; 'गीत हमारे घर चलो', गीत-मनका प्रकाशन, भोपाल, प्रथम संस्करण, सन् 2018, पृष्ठ 89.

2) जैन मनोज मधुर, 'एक बूँद हम', पहले पहल प्रकाशन, भोपाल; प्रथम संस्करण, सन् 2011,पृष्ठ 52-53.

3)मिश्र विनय,'समय की आँख नम है', बोधि प्रकाशन, जयपुर; प्रथम संस्करण, सन् 2014, पृष्ठ 69।

पाठक, पंडित रामचंद्र (सम्पादक), भार्गव आदर्श हिंदी शब्दकोश, भार्गव बुक डिपो, वाराणसी, संस्करण सन् 1995।

♦ शोध छात्रा, हिन्दी विभाग

ʌ शोध निदेशक

हिन्दी विभाग,

बरकतउल्ला विश्वविद्यालय,

भोपाल, मध्य प्रदेश ।

मोबाइल -8802868383

(पृ.सं.22 के आगे)

जीवन जीने का जो सरल मार्ग हम अपनाते हैं, उसके अनुसार जीवन में प्राप्त उपलब्धियों का श्रेय हम स्वयं को देकर फूले नही समाते हैं एवं गौरवान्वित होते हैं, कुछ अप्रिय अथवा असफल होने पर हम भगवान को दोषी मान लेते हैं। जीवन जीने एवं तनाव रहित रहने का सरल तरीका यही है कि जिन्हें हम गलतियों एवं असफलताओं का श्रेय दे रहे हैं, उन्हें ही अपनी सफलता का भी श्रेय दें तभी हम अहंकार से बच सकेंगे, मिथ्या एवं झूठ के आडंबर से मुक्त सरल एवं शांत जीवन जी सकेंगे ।

संदर्भ ग्रंथ सूचीः

1.गोवेर्धन गायत्री, श्रीमद भगवद गीता में तनाव प्रबंधन: Stress Management in Srimad Bhagavad Gita, Dev Sanskriti Interdisciplinary Journal.Vol 10 (2017)

2.यथार्थ गीता ,श्री श्रीमद ऍसी भक्तिवेदांत स्वामी प्रभूपाद, संस्थापकचार्य, अंतर्राष्ट्रीय कृष्ण भावनमृत संघ

♦ प्रो. सरोज व्यास,

निदेशक, फेयरफील्ड प्रबंधन एवं तकनीकी संस्थान,

(संबद्ध गुरु गोविन्द सिंह इंद्रप्रस्थ विश्वविद्यालय)

नई दिल्ली। फोन- 9868472404

♦ डॉ श्वेता गुप्ता

वरिष्ठ प्रवक्ता (प्रबंध विभाग)

फेयरफील्ड प्रबंधन एवं तकनीकी संस्थान,

नई दिल्ली। फोन- 8130102888

'शोध सरोवर पत्रिका' के 10 जनवरी, 2023 अंक में छपे पियुष देउरकर (शोधार्थी, मनोविज्ञान विभाग, दक्षिण बिहार, केन्द्रीय विश्वविद्यालय, गया, बिहार) के 'आधुनिक समाज में पिण्डदान अनुष्ठान की सार्थकता और निहित मनोविज्ञान' शीर्षकवाले शोध लेख में (1) डॉ.नरसिंह कुमार (असोसिएट प्रोफेसर, मनोविज्ञान विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, प्रयागराज, उत्तरप्रदेश) और (2) प्रो.धर्मेन्द्र कुमार सिंह (प्राध्यापक, मनोविज्ञान विभाग, दक्षिण बिहार केन्द्रीय विश्वविद्यालय, गया, बिहार) सहलेखक रहे।

तुलनात्मक साहित्य में अनुवाद की भूमिका-वैचारिक परिप्रेक्ष्य

♦ राजीव कुमार बेज

शोध सार:

अनुवाद के संदर्भ में सीमाओं की जानकारी भी ज़रूरी है । अनुवादक के पास यदि पूरी सूचना न हो, बुद्धिगम्यता का अभाव हो अथवा अनुवादक की निजी व्यवसायिक वृत्ति का अनुवाद कार्य पर हस्तक्षेप हो तो अनुवाद ठीक नहीं हो पाता । अथवा अशुद्ध स्तर अर्थात् कृति में प्रयुक्त प्रयुक्ति अथवा शैली का लक्ष्य भाषा की गलत प्रयुक्ति अथवा शैली के द्वारा प्रतिस्थापन के फलस्वरूप भी अनुवाद ठीक नहीं हो पाता है। इन सीमाओं के परिहार के बावजूद अनूदित कृति मूल की यथातथ्य प्रतिकृति नहीं बन पाती है, क्योंकि दोनों भाषाओं में पूर्ण अनुरूपता संभव नहीं। मगर इस कारण से हमें अपने को अनुवाद कार्य से अलग नहीं रखना चाहिए । हमें तो पहले से ही पता है कि हमारी एक पुनः सृष्टि है, जहाँ मूल लेखक के ऋण को हम लगातार याद करते हैं । हमारे भीतर और चारों ओर विद्यमान विश्व के एक खंड की सूत्रबद्ध व्याख्या को एक दूसरी निकटतम समरूप सूत्रबद्ध व्याख्या के द्वारा प्रतिस्थापित करना ही अनुवाद है । इस प्रक्रिया में से गुज़रते हुए मूल की रेखाएँ धूमिल हो जा सकती हैं। मगर किसी एक और प्रक्रिया के आधार पर, जिसको विसर्जित करना कठिन है, यदि अनुवाद मूल कलाकृति का एक छोटा, मगर पूर्ण प्रतिकृति रूप ग्रहण कर सके तो उससे अनुवाद की सफलता और अनुवाद कला की प्रामाणिकता दोनों ही प्रतिष्ठित हो पाती है ।

बीज शब्दः तुलनात्मक अध्ययन , अनुवाद, वैचारिक परिप्रेक्ष्य, प्रतिस्थापन , बुद्धिगम्यता, सांस्कृतिक संदर्भ, कला, राष्ट्रीय एकता आदि ।

भूमिकाः

तुलनात्मक साहित्य का मूल उद्देश्य एक विस्तृत परिप्रेक्ष्य में साहित्य का अध्ययन करना है, जिससे कि उसका उचित अभिज्ञान या रसास्वादन हो सके। इसके लिए आवश्यक है कि इस अध्ययन में एक से अधिक साहित्य को सम्मिलित किया जाए। तुलना करना मानव की सहज प्रवृत्ति है। लेकिन देखते हैं, किसी को यदि श्रेष्ठ और कनिष्ठ कहना हो तो उसके लिए आधारभूत बातें तय करनी होती हैं। बल में, बुद्धि में श्रेष्ठ कनिष्ठ का फैसला करने के लिए उसकी कसौटियाँ बनानी होती हैं। योग्यता के लिए कई सारे मानदंडों का निर्धारण करना होता है,तब कहीं जाकर हम श्रेष्ठ अथवा कनिष्ठ होने का दावा कर सकते हैं। यहाँ पर भी तुलना करनी होती है। किसी को किसी और से भला सिद्ध करने के लिए एक को बुरा और दूजे को भला सिद्ध करना होता है। इसी का अर्थ है हम दो की तुलना करके देखते हैं। यदि तुलना में केवल तौलने का भाग होता तो बड़ा आसान काम था। हम एक किलो वजन को 5 किलो की तुलना में कम समझते हैं, इस तरह का सीधा सादा काम होता, परंतु ऐसा नहीं है। तुलना करते हुए अगणित तत्व हमारे सामने आ जाते हैं। रंग,रूप और गुणों में उन तत्वों का अंतर्भाव होता है और रंग, रूप तथा गुणों की कोई गिनती ही नहीं होती। असंख्य वस्तुओं से संबंध होते हैं। वे और अगणित प्रकार से मनुष्य को आकर्षित करते हैं अथवा अपकर्षित करते हैं। यह तभी संभव होता है जब मनुष्य का उनसे अधिकाधिक संपर्क हो जाता है। मनुष्य-मनुष्य के संपर्क से यह वृत्ति अत्यंत बढ़ जाती है। इस दृष्टि से तुलनात्मक साहित्य में अनुवाद की भूमिका महत्वपूर्ण हो जाता है।

वैचारिक परिप्रेक्ष्यः

भारत वर्ष जैसे बहुभाषिक देश के लिए, तुलनात्मक साहित्य के अध्ययन के कई महत्त्वपूर्ण उद्देश्य हैं। इन उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए तुलनात्मक साहित्य के अंतर्गत नाना भाषाओं में रचित साहित्याध्ययन एवं उससे संबद्ध अनुवाद की भी महत्त्वपूर्ण भूमिका है। मगर देखा गया है कि विवादास्पद मसला भी कम नहीं है। इस प्रकार यदि हमें भारत की प्रधान भाषाओं का

ज्ञान नहीं है, तो क्या तुलनात्मक साहित्य की कार्यपद्धतियों के आश्रय से भारतीय साहित्य के इतिहास की रचना के लिए हमें कोई प्रयत्न ही नहीं करना चाहिए? क्योंकि हमें यह अवश्य पता है कि नाना भाषाओं का ज्ञान बहुत ज़रूरी है। इसलिए भारत के संदर्भ में अनुवाद का प्रश्न और भी महत्त्वपूर्ण है। इस परिप्रेक्ष्य को स्पष्टरूप से समझने के लिए निम्नलिखित उदाहरण को हम देख सकते हैं-

"नोबेल कमेटी ने सन् 1913 में रवींद्रनाथ ठाकुर को गीतांजलि के अनुवाद के आधार पर साहित्य का नोबेल पुरस्कार दिया था।"[1]

यद्यपि कवि ने स्वयं उसका अनुवाद किया था। लेकिन फिर भी मूल बंगला से यहाँ अनुवाद तो था ही।इस प्रकार बुद्ध देव बोस के अनुसार एक उदाहरण के रूप में निम्नलिखित दो विकल्पों में से किसी एक को चुनने के लिए कोई भी व्यक्ति स्वतंत्र है। जैसे व्याकरण को अध्ययन का मुख्य लक्ष्य मानते हुए मूल कृति के कतिपय पृष्ठों के बीच से संघर्ष करते हुए, गुज़रने का निष्ठुर संतोष अथवा आसानी से समझी जानेवाली एक ऐसी भाषा में रचित किसी लेखक की कृति की मूल संरचना के बीच से तेज़ी से गुजरने की समृद्ध अनुभूतियों में से साहित्य का विद्यार्थी निश्चय ही दूसरे विकल्प को स्वीकार करेगा। उसके लिए भाषा का ज्ञान ज़रूरी है, मगर वह किसी भाषा-स्कूल का छात्र नहीं। यदि उसे निर्विवाद रूप से साहित्य का अध्ययन करना है, तो उसके लिए अनुवाद अपरिहार्य है। अर्थात् तुलनात्मक साहित्य के अध्ययन के लिए आदर्श स्थिति यही हो सकती है कि अध्येता एक से अधिक भाषाओं से परिचित हो।

आर्नल्ड के अनुसार - "अपनी भाषा में रचित साहित्य के अतिरिक्त किसी दूसरी भाषा के साहित्य,जो ज़्यादा बेहतर हो, जिससे भली-भांति परिचित होना प्रत्येक आलोचक के लिए आवश्यक है।"[2]

दो-तीन भाषाओं में साहित्यों की सहायता से आलोचक अध्ययन का एक सामान्य प्रतिरूप तथा उनके पारस्परिक संबंधों का पता लग सकता है, मगर अपने अध्ययन को संपूर्णता प्रदान करने के लिए उसे कहीं न कहीं अनुवाद पर निर्भर रहना ही पड़ेगा। अनुवादकार्य तुलनात्मक साहित्य के लिए आवश्यक है। इस संदर्भ में बिलहेम वान हमबोल्ट कहते हैं कि "एक देश के रहनेवाले दूसरे देश की कला और मानवता से परिचय होते हैं तथा कोई एक भाषाभाषी वर्ग अर्थ और अभिव्यक्ति के नये प्रयोगों से परिचित होकर अपने ज्ञान के क्षितिज का विस्तार कर पाता है।"[3]इस कथन से स्पष्ट होता है कि मानव ज्ञान के विस्तार के लिए विभिन्न भाषाओं का ज्ञान अनुवाद के माध्यम से प्राप्त किया जा सकता है।

इसे सही तरीके से विश्लेषण करने के लिए यहाँ एक उदाहरण दिया गया है। बांग्ला के प्रसिद्ध उपन्यासकार शरतचंद्र के उपन्यासों के अनुवाद भारत के दूसरे प्रांतों में इस प्रकार से 'देशीकृत' हो चुके हैं कि उत्तर प्रदेश, गुजरात, आंध्र आदि प्रांतों में उन्हें उसी भाषा का उपन्यासकार माननेवालों की संख्या अभी भी काफी है।

"साहित्य का अनुवाद तभी संभव है, जब इसका मूल के बिल्कुल अनुरूप शब्द अनुवाद के बंधनों से मुक्त रखा जाए। इसका अर्थ यह है कि साहित्य के अनुवादक का मूल उद्देश्य संप्रेषण मूल्य के साथ संप्रेषण मूल्य का मेल करता जाए।"[4]

अर्थात् स्रोतभाष के पाठ के सामूहिक ढांचे के अंतर्गत देश, काल तथा परम्परा के संरचनात्मक मूल्यों तथा विभिन्न शैलीगत क्षेत्रों में प्रयोग में लाए जानेवाले शब्दों पर विचार किया जाए। इस तरह हम देख सकते हैं भाषाओं की अलगअलग भाषिक संरचनाओं के कारण तथा सांस्कृतिक विनिमय के अभाव में मूल संरचना तक पहुंचना कठिन हो जाता है। इसके उपरांत संरचनात्मक पुनः निर्माण में भाषाओं के स्तर के साथ ही लेखक के मूल अभिप्राय का ध्यान रखना पड़ता है। निदा के कथन के अनुसार इस प्रसंग को सरल और स्पष्ट रूप से समझने के लिए हम यहाँ देख सकते हैं - "लेखक के अभिप्राय या अर्थ के बारे में जब हमारे मन में पर्याप्त संदेह रहता है, तब अनुवाद करते हुए स्वाभाविक रूप से

हम साहित्यिक भाषा के स्तर को ऊँचा कर देते हैं। इससे बचने के लिए लेखक के मूल अभिप्राय से परिचित होने के साथ-साथ साहित्यिक अनुवाद में अतिसौंदर्यवादिता (over-estheticized) के प्रयोग से बचना चाहिए।"[5] अर्थात् अनुवाद करते हुए, पहले मूल अभिप्राय का निकटतम समानार्थी अर्थ और बाद में मूल शैली के अनुरूप शैली की ओर ध्यान रखना पड़ता है। आखिरकार अनुवादक अनुवाद विशेषज्ञों के लिए अनुवाद नहीं करता वरन् उन पाठकों के लिए करता है, जिनके लिए सुगमता, बोधगम्यता तथा साहित्यिक सौंदर्य अनुवाद की सबसे महत्वपूर्ण उपलब्धियाँ हैं। हालांकि मूल का अंकुश अनुवादक पर रहता अवश्य है। इससे यह स्पष्ट होता है कि अनुवाद के संदर्भ में सीमाओं की जानकारी भी ज़रूरी है।

उदाहरण स्वरूप - "अनुवादक के पास यदि पूरी सूचना न हो, बुद्धिगम्यता का अभाव हो अथवा अनुवादक की निजी व्यवसायिक वृत्ति का अनुवादकार्य पर हस्तक्षेप हो तो अनुवाद ठीक नहीं हो पाता, अथवा अशुद्ध स्तर अर्थात् कृति में प्रयुक्त विभिन्न प्रयुक्ति अथवा शैली के द्वारा प्रतिस्थापन के फलस्वरूप भी अनुवाद ठीक नहीं हो पाता है।"[6]

अनुवाद की भूमिका :

विज्ञान और अनुवाद

विज्ञान इस दुनिया को छोटा बना रहा है कहते हैं आज का मनुष्य थकता नहीं। परंतु वह इससे भूल जाता है कि विज्ञान के आविष्कारों ने ही इस दुनिया में ऐसे-ऐसे वैविध्य भर दिए हैं जिनके आकलन के लिए मनुष्य को अनुवाद का सहारा लेना पड़ता है। उदाहरण के रूप में कल्पना कीजिए "यदि दूरध्वनि का संदेश आकाश स्थित उपग्रहों से आ जा रहा है। दूरध्वनि के एक सिरहाने पर मराठी मात्र जाननेवाला बैठा है। इस स्थिति में उन दोनों के बीच विचारों-भावों का आदान-प्रदान क्या संभव हो सकता है ?...जहाँ इस तरह के अमृत भावों का एक भाषा से दूसरी भाषा में संप्रेषण में अनुवाद होता हो वहाँ अनुवाद कला होती है शास्त्र नहीं।"[7] अर्थात् हम कह सकते हैं कला और शास्त्र के बीच का भेद बड़ा सूक्ष्म है।यह भेद अनुवाद के क्षेत्र में आकर और भी सूक्ष्म हो जाता है। इस पर जीवन का दायित्व पड़ता है और विज्ञान तथा वैज्ञानिक आविष्कारों का भी उद्देश्य वही होता है। इसलिए शास्त्र से अनुवाद अलग हो ही नहीं सकता।

कला और कला का अनुवाद

कला और कला का अनुवाद तो मानव जीवन के लिए परम आवश्यक होने से यह कला से अपना नाता तोड़ भी नहीं सकता। यही कारण है कि हमारी प्राचीन कथाएँ, अरब से होकर यूरोप में जाती हैं और यूरोप से विदेशी होकर लौटती हैं। यही कारण है कि आज अग्निबाण, प्रक्षेपास्त्र आदि का आविष्कार जर्मनी में होता है तो आविष्कार के मूल में संस्कृत भाषा होने के कारण रहस्य को खोजा जाता है। अनुवाद की प्रक्रिया बड़ी नाज़ुक और बेधड़क दोनों प्रकार की होती है। इसलिए मूल का अन्वेषण कठिन होकर रह जाता है।उस अन्वेषण से बचने के लिए हम एक सिद्धांत ही गढ़ लेते हैं। जैसे उदाहरणस्वरूप "अनुवाद की कोई भी आविष्कार कल्पना किसी एक व्यक्ति की हो ही नहीं सकती। उस पर एक से अधिक लोगों का अधिकार होता है और हम लंबे समय तक प्रभावी कहनेवाले वेदों को अपौरुषेय कह देते हैं। हवाई जहाज़ के आविष्कार का श्रेय हम भले ही राइट बंधुओं को देते हैं, परंतु इससे यह तो सिद्ध नहीं होता है कि उसके पीछे निहित सिद्धांत उन्हीं को और केवल उन्हीं को सूझे थे। हम इस सूझ के लिए पहले कहकर कला का तत्व उसमें जोड़ देते हैं।"[8] अर्थात् कला भी एक कल्पना मात्र का ही खेल होता है। इससे दार्शनिक स्तर पर अस्वीकार करने का कोई कारण नहीं होता है।

भावुकता और अनुवाद

तुलनात्मक साहित्य में अनुवाद की आवश्यकता हमारे भावुक विश्व के लिए होती है। भावुक विश्व बड़ा ही विचित्र और कल्पनातीत होता है। हमें यहाँ 'पुनर्मूषको भव' वाले अभिशाप की कथा का स्मरण हो आता है। "प्राचीन काल में कोई एक ऋषि थे। वन में रहते थे पत्नी के साथ। उनके कोई संतान नहीं थी।...उसके

उछलने कूदने को उनकी सुपुत्री एकटक देखती हुई बोली पिताजी मैं तो इसी चूहे के साथ शादी करूँगी। देखिए तो कितना अच्छा कितना प्यारा-प्यारा है। इस पर उस ऋषि ने उस लड़की को 'पुनर्मूषको भव' अभिशाप दिया।"[9] इस कथा से चाहे जो निष्कर्ष निकाल लीजिए। कह दीजिए कि जन्मजात स्वभाव में कोई अंतर नहीं आता, चाहे कितने भी प्रयास क्यों न किया जायें। अथवा कह दीजिए कि दुनिया में एक से बढ़कर दूसरा शक्तिशाली है। अथवा कहीं एक ही दुनिया में सब कुछ संभव है, परंतु अंतरण को पहचान पाना असंभव है। और इसलिए अंत:करण को अतर्क्य, अकल्पनीय और जिसकी थाह पाना कठिन है ।

राष्ट्रीय एकता और अनुवाद

राष्ट्रीय एकता में अनुवाद एक तो भावनात्मक स्तर पर एक दूसरे को जानने, समझने, परखने का मौका मिलेगा । दूसरे आज हमारी एक राष्ट्रीयता की भावना में जो शिथिलता दिखाई देती है, वह नहीं रहेगी। "तुलनात्मक साहित्य में अनुवाद का अत्यंत महत्वपूर्ण कार्य है जिसमें शासन द्वारा पहल होनी चाहिए । उदाहरण के लिए शासन को किसी भाषा जैसे हिंदी, मराठी या अन्य में उदार उदात्त भावोंवाली रचनाएँ चुनकर उनके अनुवाद प्रकाशित करने चाहिये । केवल प्रकाशन ही पर्याप्त नहीं होगा, उन रचनाओं के प्रचार-प्रसार में भी तुरंत फल न देनेवाला इससे मिलनेवाला लाभ कोई आंकड़ों में आंक नहीं सकता, परंतु इससे कालांतर में होनेवाला प्रभाव बड़ा सुखद हो सकता है ।"[10]

अत: साहित्य में अनुवाद कार्य इस तेज़ी से बढ़ सकता है कि इसका मूल्यांकन करने के लिए तौलनिक् विचारों का सहारा लेना आवश्यक हो सकता है । तुलनात्मक आलोचना के लेखकों को भी कम से कम दो या अधिक भाषाओं को जानना परमावश्यक हो सकता है ।उन भाषाओं के साहित्य को समझना आवश्यक हो सकता है और आवश्यक हो सकता है 2 दिनों से लगनेवाले समाज की प्रवृत्तियों को समझना । ये गुण पहले को अनुवाद के लिए आवश्यक होंगे, बाद में आलोचकों को। तुलनात्मक आलोचना हो या और कोई आलोचना प्रकार, आलोचकों को मानवीय स्वभाव प्रकृति जान लेना परम आवश्यक होता है । खासकर तुलनात्मक आलोचना करनेवाले आलोचक का ज्ञान गहरा और विशाल, व्यापक होना चाहिए । क्योंकि उस पर आनेवाली ज़िम्मेदारी बहुत अलग तरह की चुनौतियों से भरी होती है ।

निष्कर्ष:

अनुवाद एक पुन: सृष्टि है, जहाँ मूल लेखक के ऋण को हम लगातार याद करते हैं। हमारे मित्र और चारों ओर विद्यमान विश्व के एक खंड की सूत्रबद्ध व्याख्या को एक दूसरी निकटतम स्वरूप सूत्रबद्ध व्याख्या के द्वारा प्रतिस्थापित करना ही अनुवाद है। इस प्रक्रिया में से गुज़रते हुए, मूल की रेखाएँ धूमिल हो जा सकती हैं, मगर किसी एक और प्रकरण के आधार पर इसको विश्लेषित करना कठिन है, यदि अनुवाद मूल कलाकृति का एक छोटा-सा हिस्सा है, मगर पूर्ण प्रतिकृति रूप ग्रहण कर सके तो उससे अनुवादक की सफलता और अनुवाद कला की प्रामाणिकता दोनों ही प्रतिष्ठित हो पाती है। उपरोक्त वर्णन, विवेचन से तुलनात्मक साहित्य अध्ययन में अनुवाद की महत्वपूर्ण भूमिका स्पष्ट रूप से समझ सकते हैं, जिसे तुलनात्मक अध्ययन में स्वीकारा गया है।

संदर्भ :

1. इंद्र नाथ चौधुरी, तुलनात्मक साहित्य भारतीय परिप्रेक्ष्य, पृ.120, प्रकाशक-वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली।
2. वही, पृ.122
3. वही, पृ.122
4. वही, पृ.93
5. वही, पृ.94
6. वही, पृ.131
7. तुलनात्मक अध्ययन स्वरूप और समस्याएँ; सं. डॉ. भ.ह. राजूरकर, डॉ. राजमल बोरा, पृ. 84-85; वाणी प्रकाशन।
8. वही, पृ. 84-85
9. वही,पृ. 85-86
10. वही, पृ. 102

♦ शोधार्थी, हिन्दी विभाग,
पोंडिच्चेरी केन्द्रीय विश्वविद्यालय,
पुदुच्चेरी-605014
मोबाइल नंबर 8456065033

स्वतंत्रता-पश्चात् मीडिया के बदलते स्वरूप 'मोबाइल पत्रकारिता' के संदर्भ में विशेष अध्ययन (आज़ादी के 75 वर्षों के अमृत महोत्सव के अवसर पर विशेष शोध पत्र)

♦ **अरुणेश कुमार**, Λ **डॉ.अरविंद कुमार पाल**

शोध सारांश : हमारा देश आज़ादी के 75 वर्षों का अमृत महोत्सव मना रहा है। आज़ादी के अमृत महोत्सव से जुड़ी खबरों के प्रकाशन और प्रसारण में मीडिया ने अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभायी है। अमृत महोत्सव से जुड़ी खबरों के माध्यम से देश के लोग खास तौर पर युवावर्ग आज़ादी से जुड़े तथ्यों और इसके अनछुए पहलुओं से परिचित हो रहे हैं।

आजादी के इन 75 वर्षों में पत्रकारिता के क्षेत्र व्यापक बदलाव आए हैं। पत्रकारिता के मूलभूत सिद्धांत आज भी वही है, लेकिन समाचारों के संकलन, संपादन और प्रस्तुतीकरण में तकनीकी आधारित बदलाव आया है। हम लोग डिजिटलाइजेशन के युग में रह रहे हैं। मोबाइल एक ऐसा उपकरण बन गया है जहां कोई भी बहुत कम समय में समाचारों को एकत्रित, संपादित और प्रस्तुत कर सकता है। मोबाइल ने मीडिया उद्योग में एक तरह से क्रांति ला दी है। मोबाइल से हर तरह की सूचनाएँ संग्रहीत, प्रकाशित और उपभोग की जाती हैं। सोशल मीडिया पर आम लोगों की मज़बूत मौजूदगी है। वे अपने सोशल मीडिया प्लेट फॉर्म के माध्यम से विभिन्न मुद्दों पर पढ़ते, लिखते और प्रतिक्रिया करते हैं। यह लोकतंत्र के लिए अच्छा है।

सोशल मीडिया के फायदे हैं तो नुकसान भी हैं। एक तरफ सोशल मीडिया सुशासन को बढ़ावा देता है तो दूसरी तरफ सोशल मीडिया द्वारा फर्जी खबरें बनाई और साझा की जाती हैं। मोबाइल फोन और सोशल मीडिया ने आधुनिक पत्रकारिता पर कितना प्रभाव डाला है, यह शोध पत्र इसी पर आधारित है।

बीज शब्दः आजादी के 75 वर्ष,अमृत महोत्सव, मीडिया, मोबाइल पत्रकारिता,सोशल मीडिया, डिजिटल इंडिया।

शोध के उद्देश्य

इस अध्ययन के निम्नलिखित उद्देश्य हैं-

आजादी के 75 वर्षों में पत्रकारिता के बदलते स्वरूपों का अध्ययन करना।

पेशेवर पत्रकारों और सोशल मीडिया उपयोगकर्ताओं के बीच स्मार्ट फोन के उपयोग का विश्लेषण करना।

शोध का समसामयिक महत्व

किसी भी समाज या देश के सतत विकास में प्रेस का स्वतंत्र होना बेहद ज़रूरी होता है। आजादी के 75 वर्षों में पत्रकारिता जगत में बहुत से बदलाव आये हैं। स्वतंत्रता आंदोलन के दौरान पत्रकारिता मिशन भाव में काम कर रही थी। देश को आज़ादी दिलाने में पत्रकारों ने अहम भूमिका निभायी।

हमारे संविधान के अनुच्छेद 19 में मीडिया और पब्लिक को अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता का अधिकार दिया गया है। सोशल मीडिया का युवाओं पर अच्छा खासा प्रभाव है। इसको देखते हुए, भारत में माबाइल पत्रकारिता की संभावनाओं और चुनौतियों के बारे में शोध करना बेहद प्रासंगिक है ।

भारत सरकार डिजिलट इंडिया की मुहिम चला रही है। सोशल मीडिया को लोकतंत्र का पाँचवाँ स्तम्भ कहा जा सकता है। भारत में मोबाइल पत्रकारिता की अपार संभावनाएँ हैं। कुछ प्रसिद्ध भारतीय मीडिया संगठनों ने पहले ही पत्रकारिता की नयी प्रथा को अपनाने की दिशा में काम करना शुरू कर दिया है। आधुनिक भारतीय मीडिया के बदलते स्वरूप में मोबाइल पत्रकारिता का उपयोग हो रहा है। यह शोध इस अध्ययन के लिए महत्वपूर्ण है कि कैसे माबाइल प्रौद्योगिकी ने पत्रकारिता के लिए नयी संभावनाएँ पैदा की हैं? यह

अध्ययन विशेष रूप से इस बात पर ध्यान केंद्रित करेगा कि मोबाइल समाचार रिपोर्टिंग भारतीय समाचार मीडिया में पत्रकारिता को किस तरह से प्रभावित करता है?

संबंधित साहित्य का पुनरवलोकन

जेन हेडली (2012) ने अपने पेपर में इस बात पर ज़ोर दिया है कि कैसे पत्रकार नई तकनीक के उद्भव के साथ खुद को ढाल रहे हैं। पेपर बोस्टन मैराथन बॉम्बिंग्स (2013) को एक केस स्टडी के रूप में पत्रकारिता प्रथाओं में बदलाव और एक विकासशील मीडिया प्लेटफॉर्म के रूप में सोशल मीडिया प्रथाओं को शामिल करने पर चर्चा करता है।

मोबाइल प्रौद्योगिकी पत्रकारिता से संबंधित कार्य करने के तरीकों को बदल रही है (ब्रिग्स, 2016, पृष्ठ277)। मोबाइल प्रौद्योगिकी ने एक संपूर्ण समाचार जगत में नए युग की शुरुआत की है (क्विन, 2013, पृष्ठ 213)।

2001 में बार्डोएल और ड्यूज़ ने इंटरनेट की अंतहीन तकनीकी संभावनाओं का पता लगाया। कैसे एक नया व्यवसाय और उद्योग डिजिटल और ऑनलाइन पत्रकारिता का निर्माण किया गया था? साक्ष्य बताते हैं कि हाल के वर्षों में जनता और नागरिक पत्रकारों के बीच मोबाइल मीडिया और मोबाइल समाचारों का ज़बरदस्त उठाव हुआ है।

रूथ ए हार्पर (हार्पर, 2010) ने कहा कि पत्रकार ट्विटर को अन्य सोशल मीडिया टूल्स के बजाय सूचना के लिए सबसे लोकप्रिय टूल मानते हैं, लेकिन एडम ओस्ट्रो के अनुसार फेसबुक सोशल मीडिया परिदृश्य पर हावी है। ऑक्सफोर्ड इंटरनेट इंस्टीट्यूट से जुड़े विलियम डटन सोशल मीडिया को लोकतंत्र का पांचवाँ स्तंभ मानते हैं।

गिलिस एंड जॉनसन (2015) ने कामकाजी पत्रकारों द्वारा सोशल मीडिया के उपयोग के राष्ट्रीय स्तर का सर्वेक्षण किया है; उन्होंने पाया कि अधिकांश पत्रकारों को सोशल मीडिया से बुनियादी समाचार स्रोत/कहानी के विचार प्राप्त हुए हैं।

शोध प्रश्न

साहित्य के उद्देश्य और समीक्षा के आधार पर निम्नलिखित शोध प्रश्न तैयार किए गए हैं-

o पत्रकार द्वारा समाचारों के संग्रह, निर्माण और प्रस्तुतीकरण के लिए स्मार्ट फोन का उपयोग कैसे किया जाता है?

o टी वी चैनलों के लिए फेसबुक और ट्विटर कैसे समाचारों के स्रोत बन रहे हैं?

o सोशल मीडिया द्वारा कौन से मुद्दे उठाए जाते हैं और इसे टी वी मीडिया द्वारा कैसे कवर और प्रस्तुत किया जाता है?

o सोशल मीडिया किस प्रकार पत्रकार को समाचार प्राप्त करने, एकत्रित करने और वितरित करने के तरीके को प्रभावित करता है?

o मोबाइल कैसे डिजिटल पत्रकारिता को सशक्त बनाता है?

o मोबाइल पत्रकारिता की चुनौतियाँ और संभावनाएँ क्या हैं?

o भारत में मोबाइल पत्रकारिता का भविष्य क्या है?

शोध प्रविधि

आज़ादी के अमृत महोत्सव में पत्रकारिता के महत्व के योगदान का अध्ययन करने के लिए साक्षात्कार प्रविधि के साथ-साथ यादृच्छिक नमूनाकरण (सिंपल रैंडम सैंपलिंग) का प्रयोग किया गया है।

स्मार्ट फोन के दौर में आधुनिक मीडिया में आ रहे बदलावों का अध्ययन करने के लिए मिश्रित शोध पद्धति को अपनाया गया है। इसके लिए मात्रात्मक विधि (सर्वेक्षण आधारित) और गुणात्मक विधि (मीडिया विशेषज्ञों के साथ गहन साक्षात्कार) ली गयी हैं।

1. सर्वेक्षण विधि दिल्ली/एन सी आर क्षेत्र के चयनित उत्तरदाताओं के बीच एक राय सर्वेक्षण अप्रैल 2021 से सितंबर 2021 तक आयोजित किया गया है।

नमूने का आकार

नमूने का आकार 200 है। 18-50 आयु वर्ग के उत्तरदाताओं का चयन किया गया है।

नमूने में 100 कामकाजी पत्रकार शामिल हैं और शेष 100 उत्तरदाताओं में फ्रीलांस पत्रकार (यूट्यूब चैनलों

से संबंधित समाचार) शामिल हैं।

प्रश्नावली डेटा संग्रह के लिए एक संरचित प्रश्नावली बनायी गयी है।

2. साक्षात्कार विधि

यह अध्ययन गहन साक्षात्कारों से एकत्रित आंकड़ों से विषयगत विश्लेषण का उपयोग करता है। साक्षात्कार के तीन प्रमुख विषय हैं-

(1) मोबाइल फोन का प्रसार और देश में समाचार उत्पादन और वितरण पर इसका प्रभाव।

(2) मोबाइल पत्रकारिता और समाज में फेक न्यूज़ की फूलती-फलती संस्कृति।

(3) डिजिटल समय में मोबाइल पत्रकारिता और समाचार सत्यापन के लिए पत्रकारों का प्रशिक्षण।

आंकड़ों का विश्लेषण

o 65% उत्तरदाताओं ने कहा कि मोबाइल फोन से रिपोर्टिंग करना बेहद आसान है और ये टी वी रिपोर्टिंग के पारंपरिक तरीके से बहुत सस्ता पड़ता है।

o 50% उत्तरदाताओं ने कहा कि स्मार्ट फोन से वे लाइव रिपोर्टिंग करते हैं जो कि आसानी से उन्हें स्टूडियो और पी सी आर से कनेक्ट कर देते हैं।

o 60% उत्तरदाताओं ने कहा कि डिजिटल मीडिया के लिए मोबाइल पत्रकारिता का भविष्य बहुत उज्जवल है।

o अध्ययन में शामिल 10 में से 8 ट्विटर उपयोगकर्ता (80%) कहते हैं कि वे समाचार के लिए ट्विटर का उपयोग करते हैं। इसी तरह 10 में से 7 फेस बुक यूज़र्स (70%) ने कहा कि उन्हें इससे समाचार और समसामयिक मुद्दों से संबंधित जानकारी मिलती है।

o लगभग 10 में से 8 समाचार निर्माता ट्विटर को ब्रेकिंग न्यूज अलर्ट के लिए मानते हैं। इसी तरह 10 में से 6 निर्माता किसी भी समाचार/मुद्दों के बारे में प्रत्यक्ष जानकारी के लिए फेसबुक पर विचार करते हैं।

o 75% उत्तरदाताओं ने कहा कि फेसबुक और ट्विटर पोस्ट संपादकीय टीम को एक समाचार चैनल के प्राइम टाइम में अपनी समाचार प्रोग्रामिंग तय करन में मदद करते हैं।

o 80% उत्तरदाताओं ने कहा कि समाचार उपयोगकर्ताआ की खबर या तो उनकी टाइमलाइन स्क्रॉल करके या उनके द्वारा अनुसरण किए जानेवाले ट्वीट्स ब्राउज़ करके प्राप्त होती है।

निष्कर्ष

शोध के मुताबिक बीते 75 वर्षों में पत्रकारिता ने अपना स्वरूप काफी हद तक बदला है। ये बदलाव तकनीकी के ज़रिए आए हैं। समय की मांग भी यही है कि मीडिया अपने नए पाठकों, दर्शकों और श्रोताओं के लिए बदलाव करे। इसी कारण से अब पारंपरिक मीडिया का रूप भी नवीनतम मीडिया के स्वरूप में बदल रहा है। अब सभी मीडिया संस्थानों ने अपना मोबाइल अपलीकेशन (ऐप), वेबसाइट, यूट्यूब एकाउंट बनाया है जहाँ लाखों युवाओं को उनकी पसंद की सूचना और समाचार ब्रॉडकास्ट और पॉडकास्ट के रूप में मिल रही है।

पत्रकारिता का अब डिजिटल स्वरूप आ गया है जहाँ पर मीडिया कन्वर्जेंस हो रहा है। अब अखबार खरीदने की ज़रूरत नहीं रह गई है। आज की नयी पीढ़ी अखबार की सॉफ्ट कॉपी ई-पेपर के रूप में अपने मोबाइल फोन में पढ़ लेती है। भले ही मीडिया ने अपना रूपरंग बदला हो, पर पत्रकारिता के मूलभूत सिद्धांत कभी नहीं बदलते। मीडिया बदलते भारत की छवि आम लोगों तक पहुंचाता है।

तकनीकी ने मीडिया की तरक्की को और आसान बना दिया है। 4 जी और 5 जी मोबाइल प्रौद्योगिकियों की शरुआत ने समाचार एकत्र करने और रिपोर्टिंग के लिए स्मार्टफोन के उपयोग को बढ़ावा दिया है। यह मीडिया उद्योग में तकनीकी अभिसरण के कारण नयी समाचार संस्कृति की पुष्टि है।

इस अध्ययन में यह भी कहा गया है कि बड़े टेलीविज़न समाचार चैनल रिपोर्टिंग के पारंपरिक तरीके (जैसे ओबी वैन और ब्रॉडकास्टिंग सिस्टम) का उपयोग कर रहे हैं और साथ ही वे मोबाइल संचालित पत्रकारिता का अभ्यास भी कर रहे हैं, क्योंकि इसकी आसान गतिशीलता, तेज़ी से उत्पादन और समाचारों का वितरण कम लागत और यह दर्शकों को वास्तविक समय में

लाइव प्रसारण और ब्रेकिंग न्यूज़ की क्षमता भी प्रदान करता है। मोबाइल आधारित पत्रकारिता ने पत्रकारों के काम को आसान, तेज़ और सस्ता बना दिया है।

मोबाइल फोन के प्रसार से समाचार जगत पर इसका व्यापक प्रभाव पड़ा है। कई अंतरराष्ट्रीय प्रसारण चैनलों ने मोबाइल पत्रकारिता को स्वीकार किया है। सी एन एन, बी बी सी और अल जज़ीरा जैसे समाचार प्रदाता मोबाइल से पत्रकारिता कर रहे हैं। भारत में भी कई मीडिया संस्थानों ने मोबाइल को रिपोर्टिंग में प्रयोग करना शुरू कर दिया है। मोबाइल से समाचारों का तेज़ी से प्रसारण हुआ है।

सोशल मीडिया समाज का अहम हिस्सा बन गया है। सिटीज़न्स अब नेटिज़न्स बन गए हैं। व्यक्तिगत या पेशेवर से संबंधित जानकारी सोशल मीडिया पर अपने उपयोगकर्ता द्वारा साझा की जाती है। कुछ जानकारी तथ्यों पर आधारित हो सकती है और कुछ काल्पनिक हो सकती है, इसी तरह कुछ सोशल मीडिया उपयोगकर्ता सत्यापित जानकारी और कुछ असत्यापित जानकारी साझा करते हैं। तो यह मुख्यधारा के मीडिया की ज़िम्मेदारी है कि वह सोशल मीडिया प्लेट फॉर्मों से तथ्यात्मक समाचारों पर शोध करे और उन्हें प्रस्तुत करे।

इन्फोडेमिक के युग में, हमें केवल सोशल मीडिया से जो जानकारी मिल रही है उस पर भरोसा नहीं करना चाहिए। मेनस्ट्रीम मीडिया को सोशल मीडिया से ज़्यादा ज़िम्मेदार होना चाहिए। पत्रकार को वास्तविक जानकारी जनता को बतानी चाहिए। आज के दर्शक जो पढ़ते हैं, उसे चुनने में सक्षम होने की उम्मीद करते हैं और अधिकांश का मानना है कि उन्हें सामग्री और राय भी योगदान करने में सक्षम होना चाहिए।

इंटरनेट पारदर्शिता, नवाचार, अभिव्यक्ति और एकजुटता के उत्प्रेरक के रूप में उभरा है, मोबाइल पत्रकारिता समाचार और सूचना के निर्माण और प्रसार में कुछ ताज़ी हवा लेकर आयी है। यह मुफ़्त, निष्पक्ष और तेज़ है। यह वास्तव में लोकतांत्रिक, सुलभ और संवादात्मक है क्योंकि स्मार्ट फोन प्रत्येक नागरिक को खुद को व्यक्त करने के लिए एक मंच प्रदान करते हैं। मोबाइल पत्रकारिता का भविष्य बेहद उज्ज्वल दिखाई दे रहा है।

संदर्भ

o एडोर्नेटो, ए.सी. (2016)। फाटक पर बल स्थानीय टेलीविज़न समाचार कक्षों में संपादकीय और उत्पादन निर्णयों पर सोशल मीडिया का प्रभाव। इलेक्ट्रॉनिक समाचार, डीओआई 10.1177/1931243116647768

o एलेजांद्रो, जे। (2010)। सोशल मीडिया के युग में पत्रकारिता। रॉयटर्स इंस्टीट्यूट फेलोशिप पेपर, यूनिवर्सिटी ऑफ ऑक्सफोर्ड, 2009-2010

o बेलेयरगगनन, वी, मिश्रा, एस।, और अगुर, सी। (2014)। भारतीय सार्वजनिक क्षेत्र का पुनर्निर्माण दिल्ली सामूहिक बलात्कार मामले में न्यूज़वर्क और सोशल मीडिया। पत्रकारिता, 15(8),1059-1075

o ब्लूम, टी, क्लीरी, जे।, और नॉर्थ, एम। (2016)। अंतर्राष्ट्रीय समाचार संचालन में ट्विटरस्फेयर सोशल मीडिया नीतियों का पता लगाना। पत्रकारिता अभ्यास, 10(3), 343-357,डीओआई10.1080/17512786. 2015.1017408।

o फ्रंज़, एम। (2009)। कैसे सामाजिक नेटवर्किंग पत्रकारिता को बदल रही है, द गार्जियन, 18 सितंबर, यूके से प्रकाशित

o चोर्ले, एमजे, और मोटर्सहेड, जी (2016)। क्या आप मुझसे बात कर रहे हैं? सोशल मीडिया पर पत्रकारिता वार्तालाप का विश्लेषण। पत्रकारिता अभ्यास, 10(7),856-867,डीओआई 10.1080/17512786.2016.1166978

o गिलिस, टीएल, और जॉनसन, के (2015)। युवा पत्रकार सोशल मीडिया का उपयोग करने की अधिक संभावना रखते हैं। समाचार पत्र अनुसंधान जर्नल, 36(2), 184-196। गियरहार्ट, एस, और कांग, एस। (2014)

♦ अरुणेश कुमार,जनसंचार विभाग, पी एच डी रिसर्च स्कॉलर, शारदा विश्वविद्यालय, ग्रेटर नोएडा।

Λ डॉ. अरविंद कुमार पाल,जनसंचार विभाग, सहायक प्राचार्य, शारदा विश्वविद्यालय, ग्रेटर नोएडा।

मुद्रक तथा प्रकाशक डॉ.पी.लता, आरती, टी.सी. 14/1592, फोरस्ट ऑफिस लेन, वषुतक्काटु, तिरुवनन्तपुरम -14 द्वारा अबी प्रकाशन एन्ड प्री-प्रेस, करुमम्, तिरुवनन्तपुरम -2 में मुद्रित तथा डॉ.पी.लता द्वारा संपादित
Printed & Published by Dr.P.Letha, Arathi, T.C. 14/1592, Forest Office Lane, Vazhuthacaud, Thiruvananthapuram -14,
Printed at Abi Design & Pre-Press, Karumom, Thiruvananthapuram -2 & Edited by Dr. P. Letha